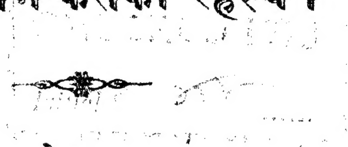
राजनीतिक षड्यन्त्र

श्रीउपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय

राजनीतिक-षड्यन्त्र

—:❀(अथवा)❀:—

अलीपुर बम-केसका रहस्य।



लेखक—

श्रीयुक्त उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय।



प्रकाशक—

उमादत्त शर्मा,

"राजस्थान एजेन्सी" ८।१, रामकुमार रक्षित लेन,

कलकत्ता।



सम्वत् १६७८ वि०

प्रथम संस्करण } २००० }

{ मूल्य एक रुपया { १)

Printed by S. C. Ray at the Samachar Press,

8|1 Ramkumar Rakhit Lane, Calcutta.



निवेदन ।

प्रख्यात 'युगान्तर' के सम्पादक, श्रीउपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय महोदय, अलीपुर बम-केसमें एक अन्यतम अभियुक्त थे और उन्हें भी अन्यान्य अभियुक्तोंके साथ आजन्म कालेपानीकी सजा हुई थी। बारह बर्षकी कठोर तपस्याके बाद उपेन्द्र बाबू जिस तरहसे आज़ाद हुए हैं, वह सब पाठक इस पुस्तकमें पढ़ेंगे। उन्हीं उपेन्द्र बाबूने बङ्गलामें 'निर्वासितेर-आत्मकहानी' नामक पुस्तक लिखी है। बङ्गलामें उसका खूब आदर हुआ है। हिन्दी भाषाभाषी भी उससे वञ्चित न रह जायं, इस लिये इसे मैं हिन्दीमें प्रकाशित कर रहा हूं।

बङ्गला पुस्तकसे इसमें कुछ विशेषता है। वह यह कि—पुलिस कोर्टमें अलीपुर बम-केसके अभियुक्तोंके जो बयान हुए थे, उनमेंसे प्रधान प्रधान नेताओंके बयान परिशिष्ट भागमें जोड़ दिये गये हैं, साथ ही प्रधान प्रधान चार नेताओंके चित्र भी देदिये गये हैं—जो बङ्गला पुस्तक में नहीं हैं।

देशमें आज विप्लव-पन्थियोंका पता भी नहीं है। जो लोग काम करनेवाले थे, सबके मत परिवर्तन हो गये हैं। वह एक लहर आयी थी, जो अपना काम करके समयके गर्भमें लीन हो

गयी। उससे देशको कुछ लाभ हुआ है या हानि? इसका उत्तर देनेका मुझे कोई अधिकार नहीं।

विप्लव-पन्थियोंसे देशवासियोंकी सहानुभूति थी और है भी या नहीं—यह कहना कठिन है, परन्तु देशके नामपर जिसने चाहे जिस तरहसे कष्ट उठाया हो, वह देशवासियोंकी सहानुभूति और कृपाका अवश्य पात्र है। काम करनेके मार्गमें अनेक तरहके मत-भेद होनेपर भी हरएक माताका पुत्र, परस्परमें सहोदर है।

उपेन्द्र बाबूने इसको हिन्दीमें प्रकाशित करनेकी केवल एक ही संस्करणकी मुझे अनुमति दी है, इसके लिये मैं उनका चिरकृतज्ञ हूं। बहुत शीघ्रतामें छपने और मेरी अपनी अस्थिर स्थितिके कारण, प्रूफमें अनेक जगह गड़बड़ हो गयी है, पाठक कृपाकर सुधार लें।

कलकत्ता,
ता० २० जनवरी,
सन् १९२२

उमादत्त शर्मा।

भूमिका ।



बङ्गाल या हिन्दुस्थानके और-और प्रान्तोंमें जिन युवकों ने अङ्गरेज़ी सरकारके विरुद्ध षड्यन्त्र किया था, उन्हें सरकारी काग़ज़-पत्रों और अङ्गरेज़ी अखबारोंमें 'अनारकिस्ट' (anarchist) कहा गया है। पर अङ्गरेज़ोंमें जो लोग सब तरह की शासन-प्रणालियोंके विरोधी होते हैं, वेही 'अनारकिस्ट' कहे जाते हैं। मैं नहीं जानता, कि हिन्दुस्थानमें आज तक ऐसा भी कोई दल हुआ अथवा अब भी है या नहीं। जिन पराधीन देशोंमें विदेशी शासन-यन्त्रको पलट देनेका कोई वैध उपाय नहीं रहता, उनमें यदि स्वाधीनताकी इच्छा उत्पन्न हुई, तो अवश्य ही गुप्त-सभा-समितियां बनने लग जाती हैं। इटली, पोलैण्ड, आयर्लैण्ड आदि देशोंमें जिन सब कारणोंसे विप्लव-वादियोंका जन्म हुआ, वेही सब कारण पूरी मात्रामें यहां भी वर्त्तमान थे, इसी लिये हिन्दुस्थानमें भी विप्लवकी चिनगारी दिखाई पड़ी थी। हमारे शासकों को भी यह बात मालूम है, इसी लिये वे इतनी मुस्तैदी और जल्दबाजीके साथ रिफार्म-रूपी शान्ति जलका छींटा देकर उस चिनगारी को बुझा देनेके लिये चेष्टा कर रहे हैं। कानूनी ढंगसे चलकर

भी स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है, ऐसी आशा लोगोंमें पैदा हो गयी है, इसी लिये पुराने विप्लव-वादियोंमें से बहुतोंने नयी राह पकड़ली है और नये ढंगसे स्वदेशकी सेवा करनेको तत्पर हुए हैं। उनकी वह आशा, सत्य है या भ्रमसे पूर्ण, इसका विचार करनेका अवसर अभी तक नहीं आया है। हाँ इतनी बात त जरूर ही सच है, कि वे और चाहे जो कुछ हों, पर अनारकिस्ट नहीं हैं। अतीत कालकी अंधेरी गुफासे उस भूले भुलाये इतिहास को बाहर निकाल लानेकी कोई जरूरत नहीं है। यहां पर सिर्फ यही इतना कहना काफी होगा, कि भारतवर्षमें विप्लव-वादका जन्म देनेके लिये सरकार जितनी जिम्मेवार है, उतना और कोई नहीं। आज जो रिफार्म (शासन-सुधार) झटपट पास कराकर भारतको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की गयी है, वही यदि बीस वर्ष पहले मिल जाता और प्रत्येक अङ्गरेज हिन्दुस्थानियोंको 'नेटिव'-'निगर' (काला आदमी) न समझकर मनुष्य समझने लग जाता, तो इस विप्लव-वादका शायद कभी नाम भी नहीं सुनाई देता। बङ्गालके टुकड़े होनेके पहले भी भारतवर्षको स्वाधीन करनेके लिये गुप्त-सभा–समितियां कायम हुई थीं; पर उनका वैसा कुछ फल नहीं निकला। लार्ड कर्जनके किये हुए अपमानसे सारा बंगाल तूफानसे खल बलाये हुए समुद्रकी तरह चञ्चल हो उठा। सच पूछिये तो इसीसे बंगालमें विप्लव-वादके पैर जमे। सरकारी नौकरोंके व्यवहारसे बंगालियोंके आत्म गौरवको पद पद

पर ठेस लगती गयी, इसीसे उनकी समझमें यह बात बैठती चली गयी, कि अंगरेज़ोंके अधिकारमें रह कर हम कभी मनुष्यत्व न पा सकेंगे। इसी कारणसे बंगालियोंने अपने क्षीण प्राणोंकी सारी शक्ति लगा कर अंरेज़ोंकी दुर्जय शक्तिका प्रतिरोध करने की चेष्टाकी थी। कोई यों ही शौकसे अपना सिर नहीं कटवाया करता। देशमें उन दिनों जैसी प्रबल उत्तेजनाका सोता फूट पड़ा था, वही एक जगह आकर 'भंवर' बन गया और विप्लव-केन्द्रकी सृष्टि हो गयी। 'युगान्तर' भी इसी तरहका एक विप्लव-केन्द्र था।

श्रीउपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय।





राजनीतिक-षड्यन्त्र —



श्रीबारीन्द्रकुमार घोष।   श्रीउपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय।

भूतपूर्व सम्पादक--'युगान्तर'

राजनीतिक-षड्‌यन्त्र

— अथवा —

अलीपुर-बमकेसका रहस्य।

पहला परिच्छेद।



न् १६०८ ई० का जाड़ा था। पर इधर सरगरमी भी खूब थी। उपाध्याय महाशय 'सन्ध्या' में थोड़े दिनोंसे खूब चटपटे मसाले भरने लगे थे; अरविन्द बाबू जातीय शिक्षाका कार्य करनेके लिये बड़ौदेकी नौकरी छोड़ कर आ पहुंचे थे; विपिन बाबू भी पुरानी कांग्रेस से नाता तोड़ चुके थे; ऐसा मालूम होता था, मानो सारा देश किसी नयी चीज़की इन्तज़ारी कर रहा है। मैं भी हाल ही में साधुका बाना छोड़कर मास्टरीमें मन लगा रहा था। इसी समय एका-एक 'वन्देमातरम्' की एक संख्या हाथ आ गयी। भारतके

राजनीतिक आदर्शकी आलोचना करते हुए उसके लेखके लेखक-ने लिखा था,—"We want absolute outonomy free from British control."* आज कल तो यह बात हर गली-कूचेमें टके सेर बिक रही है, परन्तु उस समय बड़े बड़े राजनीतिक पण्डे भी खुले मुंहसे यह बात नहीं कह सकते थे। सुतरां एकाएक यह बात अखबारमें छपी देख, मेरा मन धड़कसा उठा। उस समयके नेता घुमा घुमाकर बातें करते थे। बात कुछ और ढङ्गसे कहते, पर मतलब कुछ और ही रखते थे। जब वे self Government (स्वराज्य) के सम्बन्धमें वक्तृता देते, तब उसके पहले colonial (औपनिवेशिक) शब्द लगा कर दोनों पहलू बचाये रहनेकी चेष्टा करते थे। इससे कानून-का भी पालन हो जाता और सुननेवाले तालियां भी पीटने लगते थे!

लेकिन मुझपर भी कैसी कमबख्ती सवार थी! अखबारमें छपे हुए ये अक्षर मेरे कानोंमें गूञ्जते गूञ्जते एक बार ही दिमागमें घुस पड़े। रह रहकर मेरा मन यही कहने लगा,—"अजी! क्या बैठे हो? उठो—उठो—उठ खड़े होनेका समय आपहुंचा है!" फिर उस रातको नींद नहीं आयी। मैंने लेटे ही लेटे यह सोचा, कि इन बातोंके अन्दर कुछ तत्व भी है या नहीं। इस की तलाश करनी चाहिये। कहीं ये सब कोरी बातें ही तो

* हमें वृटिश आधिपत्यहीन पूर्ण स्वराज्य चाहिये।

नहीं हैं ? खोज-ढूंढ़ करने निकला, तो ऐसी ऐसी विचित्र बातें सुननेमें आयीं, कि मैं तो भौंचक्का सा हो रहा। सुना कि किसी पहाड़की अंधेरी और एकान्त गुफामें दो लाख नागाओंकी सेना तलवार पैनाये बैठी है। सभी हथियार मौजूद हैं, हिन्दुस्थानके और और प्रान्त भी तैयार हैं, सिर्फ बङ्गाली पीछे पैर दिये हुए हैं, इससे वे लोग कार्य करनेमें विलम्ब कर रहे हैं। मैंने सोचा, कि ऐसा हो, तो आश्चर्य ही क्या है? सम्भव है, यह बात ठीक ही हो।

इसी समय कलकत्ते से 'युगान्तर' नामका अखबार निकलना शुरू हुआ। जहां तहां लोग काना फूसी करते सुनाई पड़ते कि 'युगान्तर' का अड्डा विद्रोहियोंका केन्द्र है। विप्लव-विद्रोहकी चर्चा कानमें पड़ते ही अनेक युगोंकी कथाएं तरङ्गकी तरह मेरे मनमें उठने लगीं। फ्रान्सके राब्सपियरसे लेकर 'आनन्दमठ' के जीवानन्द पर्यन्त सभी एकबार मनमें अपनी झलक दिखा गये। इस देशमें जो लोग विप्लव लायंगे, भविष्यमें स्वाधीन भारतकी जो जीती जागती मूर्त्तियां होंगी वे, किस तरहके जीव हैं, यह देखनेकी मेरे मनमें बड़ी इच्छा हुई। मैं अपने घरके एक कोनेमें चुपचाप पड़ा रहूं और दूसरे दश पांच जने मिलकर रातोंरात भारतको स्वतन्त्र कर डालें, यह बात भला कैसे हो सकती है? मेरा जी व्याकुल होने लगा।

मैंने कलकत्ते के 'युगान्तर' कार्यालयमें आकर देखा, कि तीन चार युवक एक फटी सी चटाईपर बैठे हुए भारतका उद्धार करनेमें जुटे हुए हैं! वहां युद्धको सामग्रियोंका अभाव देखकर जी कुछ छोटा जरूर हो गया, पर यह भाव क्षणभर ही रहा। गोले-गोलियोंका अभाव उन लोगोंने बातोंसे ही दूर कर दिया। मैंने देखा, कि वे सभी इस विषयमें एक मत हैं, कि लड़ाई करके अङ्गरेजोंको इस देशसे निकाल बाहर करना, कोई बड़ी बात नहीं है। आज हो या कल अथवा दो चार दिन बाद, यही 'युगान्तर' आफिस गवर्नमेण्ट हाउस हो जायगा, इस विषयमें किसी को जरा भी सन्देह नहीं था। क्या उनकी बात चीतसे, क्या रहन सहनसे, क्या हाव भावसे, मेरे मनमें यह धारणा जमसी गयी, कि इन सबके अन्दर अवश्य ही कोई देशव्यापिनी शक्ति छिपी हुई है।

दो चार दिन आने जानेसे धीरे २ मेरा परिचय 'युगान्तर' के अधिकारियोंसे हो ही गया। मैंने देखा, कि वे सबके सब फक्कड़ और सैलानी हैं। देवव्रत (ये पीछे चलकर 'प्रज्ञानन्द' के नामसे प्रसिद्ध हुए थे) बी० ए० पास कर कानून पढ़ रहे थे। एका एक भारतके उद्धारके दिन आये देख, कानूनकी पढ़ाई छोड़कर 'युगान्तर' के सम्पादक बन बैठे। स्वामी विवेकानन्दका छोटा भाई भूपेन भी सम्पादकोंमेंसे एक था। अवि-

नाश, पगलोंके इस परिवारकी गृहिणीका काम करता था। 'युगान्तर' की मैनेजरीसे लेकर घर गृहस्थीके भी बहुतसे कामों का बोझा उसीके सिरपर था। बारीन्द्रसे जान पहचान होनेमें जरा देर लगी, क्योंकि वह मैलेरियासे पीड़ित होकर देवघर (बैद्यनाथ) चला गया था। उसकी वह हड्डी चाम भर बची हुई दुबली पतली देह, घुटा हुआ बड़ा सा सिर, बड़ी २ आंखें और लम्बी नाक देखकर हा मैं समझ गया, कि यह आदमी उन्हींमेंसे एक है, जो कल्पना करते करते झोंकमें आकर अनहोनी को भी कर दिखानेकी जुरअत करते हैं। हिसाबमें फेल होते होते ऊब कर कालेजकी पढ़ाई छोड़नेके बादसे लेकर आजतक उसने केवल सारङ्गी बजाई, कविताएं लिखीं और पटनेमें कुछ दिन चायकी दूकान चलाई थी। यही सब कीर्त्ति उसने अबतक कमायी है। बड़े आदमीका बेटा होनेपर भी वह दैव चक्करमें पड़कर दुःख दरिद्रताकी अभिज्ञतासे वञ्चित नहीं रहा। इस बार वह ५०) की पूंजी लेकर 'युगान्तर' निकालने बैठा है! जिस दिन मेरी उसकी देखादेखी हुई, उसके दूसरे दिन उसने, मुझे यह बात समझादी, कि बस दस ही बरसके अन्दर भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ चाहता है—जरूर ही हो जायगा, बाकी न रहेगा।

फिर भला भारतके उद्धारका ऐसा अच्छा मौका कौन हाथ से जाने दे? मैं भी अपने डेरे परसे अपना बोरिया-बधना

समेट लायो और उसी आफिसमें आकर डट गया। कुछ दिन बाद, देवव्रत 'नवशक्ति' कार्यालयमें चला गया। भूपेन भी पूरब बंगालको सैरको निकल गया। इसलिये 'युगान्तर'के सम्पादनका भार मेरे और वारीन्द्रके ही ऊपर आ पड़ा। अब क्या था, मैं भी पाँचवाँ सवार हो गया!

ओह, बङ्गालके लिये वे दिन भी कैसे ग़ज़बके थे! आशाके रंगीले नशेसे उस समयके बङ्गाली छोकरे मस्तसे हो रहे थे। सबके दिलोंमें यही व्याप गया था, कि "लाख बाधा-विघ्न होवें, पर न हम घबरायेंगे।" न मालूम किस दैवी स्पर्शसे बंगालियोंके सोये हुए प्राण जग पड़े थे। न जाने किस अनजाने देशके आलोक ने आकर उनके मनमें छाये हुए युग युगान्तरके अंधेरेको दूर कर दिया था। "जीने-मरनेकी नहीं चिन्ताही मनमें लायेंगे"। रवीन्द्र बाबूने इस प्रकारका जो चित्र अङ्कित किया है, वह उस समयके युवक बंगालियोंका ही चित्र है। सचमुच उस समय हमारे मनमें एक बड़ा भारी विश्वास पैदा हो गया था। हमी सत्य हैं—अङ्गरेजोंकी गोला-गोली, तोप-बारूद, पलटन और मेशीनगन आदि कुछ भी नहीं, मायाकी छाया मात्र हैं! यह बालूकी भीत, ताशका घर—हमारी एक ही फूंकमें उड़ जायेगा। हम अपना लिखा देखकर आपही चौंक उठते थे—जीमें ऐसा समझने लगते थे, मानों देशके प्राण-पुरुष हमारा हाथ पकड़ कर अपने मनकी बातें लिखवा रहे हैं।

बड़े धड़ल्लेके साथ दिन-दिन 'युगान्तर' के ग्राहकोंकी संख्या बढ़ने लगी। एक हज़ारसे पाँच हज़ार पाँचसे दस, दससे एक बरसके भीतरही-भीतर बीस हज़ार तक संख्या पहुंच गयी। अब इतनी कापियाँ छोटेसे प्रेसमें छापना कठिन हो गया। तब छिपे-छिपे दूसरे प्रेसोंमें छपवानेके सिवा और कोई उपाय हाथमें न रह गया।

मकानके एक कोनेमें एक टूटासा सन्दूक पड़ा रहता था। उसीमें युगान्तरकी बिक्रीके पैसे रहते थे। कितनी आमदनी होती है और कितना खर्च होता है, इसका हिसाब कोई नहीं माँगता था। बीच-बीचमें बहुतसे छोकरे आकर यहां ठहरते और खाते-पीते थे। उनके घर कहां हैं, वे क्या करते हैं, इसका हाल कोई नहीं पूछता था, किसीको फिक्र भी नहीं रहती थी, कि पूछता फिरे। सिर्फ़ हमलोग इतनाही जान लेते थे, कि वह "स्वदेशी" हैं या नहीं स्वदेशी होनेही से वह हमारे अपने सगे हो जाते थे।

मैं जब कभी बाहर निकलता, तब उस मकानके सामने ही कुछ लोग चीलकी तरह मंडराते हुए दिखाई पड़ते। हमलोगोंको देखकर वे लोग कभी आसमानकी ओर देखने लगते थे, कभी सामने वाली चायकी दूकानमें घुस पड़ते थे और कभी कोई सीटी बजाता हुआ चल देता था। मैंने पूछ कर मालूम किया,

कि ये ही सी० आई० डी० वाले हैं। पर वहां सी० आई० डी० को कोई किस खेतकी मूली समझता था ?

इसी तरह दिन बीतते चले गये। एक दिन, एक सरकारी चिट्ठी आ पहुंची, जिसमें लिखा था, कि आज कल 'युगान्तर' में जैसे लेख निकल रहे हैं, उनसे राजद्रोह टपकता है, अगर आगे भी यही सिलसिला जारी रहा, तो कानूनी कार्रवाई की जायगी। उस चिट्ठीको पढ़कर हमलोग हंसते-हंसते लोट पोट हो गये। कानून क्या चीज़ है, भाई ! हमी लोग तो भारतके भावी सम्राट्-गवर्मेण्ट हाउसके वारिस हैं—फिर हमें कानूनका डर दिखानेवाले तुम कौन हो ?

पर 'बाघ-बाघ' करते-करते एक दिन सचमुच बाघ आही पहुंचा। इन्सपेक्टर पूर्ण लाहिड़ी कई कान्स्टेबलोंके साथ युगान्तर-कार्यालयकी खानातलाशी करनेके लिये आ धमके। उनके पास 'युगान्तर' के सम्पादककी गिरफ़ारीका वारन्ट भी था। पर सम्पादकका पता भी तो हो ? यह कहता, "मैं सम्पादक हूं"। वह कहता, "नहीं जी ! सम्पादक तो मैं हूं।" अन्तमें भूपेनको ही ज़रा मोटा-तगड़ा और दाढ़ी मूंछवाला गठीला जवान समझ कर सम्पादक बतलाया गया। जब भूपेनने अदालतमें सफाई देकर अपनेको बचानेकी चेष्टा नहीं की, तब देशके नौजवान-छोकरोंमें बड़ी हल चलसी मच गयी। बात भी एकदम विचित्र

थी। सरकारकी ओरसे इस बातकी चेष्टाकी गयी, कि भूपेन माफी माँगकर छुटकारा पाले, पर वह राजी न हुआ। इसलिये मैजिस्ट्रेट किंग्सफोर्डने उसे साल भरके लिये जेलमें ठूंस दिया।

इसी समयसे देशमें राजविद्रोही मामलोंकी धूमसी मच गयी। दो सप्ताह बीतते न बीतते ही 'युगान्तर' पर फिर मामला चला और उसके प्रिन्टर बसन्तकुमारको जेल जाना पड़ा।

इसी तरह एक-एक करके बहुतसे छोकरे जेल जाने लगे। तब बारीन्द्रने कहा,—"इस प्रकार व्यर्थ ही शक्ति नष्ट करनेसे कोई लाभ नहीं है। बातोंके तीरसे गवर्मेण्टकी मिट्टीमें मिला देनेको तो कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती। इसलिये अब तक हम लोगोंने जिन बातोंका प्रचार किया है, उन्हें अब स्वयं काममें लाकर दिखला देना चाहिये।" बस इसी सङ्कल्पसे मानिकतल्ला-बागानकी सृष्टि हुई।

मानिकतल्लामें बारीन्द्रका एक बगीचा था। निश्चय हुआ कि एक नये दलके ऊपर 'युगान्तर' का भार देकर युगान्तर-आफिसके कुछ चुने हुए नौजवानोंको लेकर इसी बगीचेमें एक नया अड्डा कायम किया जाय। जिन्हें घर-द्वारकी कोई फिक्र न हो, अथवा रहने पर भी जो उसकी फिक्र छोड़ दे सकते हों, ऐसे ही लोगोंका इस दलमें रखनेका विचार हुआ, परन्तु

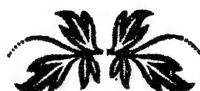
धार्मिक जीवन हुए बिना प्रायः ऐसा चरित्र गठित नहीं होता ; इसीलिये इस बगीचेमें धर्म-शिक्षाकी व्यवस्था करनी होगी, यह भी निश्चय हुआ। मैं उस समय तुरन्तही साधुका बाना उतार कर यहाँ चला आया था, इसीसे पोथियोंमें लिखी हुई साधारण धर्म-शिक्षा पर मेरी वैसी कोई गहरी श्रद्धा न थी। परन्तु वारीन्द्र काहेको मानने लगा ? वह तो पूरा हठी था। गेरुए पर उसकी बड़ी भारी भक्ति थी। उसने सोचा, कि एक अच्छेसे साधु-संन्यासीको अपने दलमें मिला लेनेसे, उनकी शिक्षा-दीक्षा के प्रभावसे छोकरे धार्मिक बन सकेंगे। इसी आशासे वह साधु खोजने निकला। लाचार, मुझे भी उसके साथ चलना पड़ा। पर कहाँ जायें हमारे फन्देमें पड़नेको भला कहां कोई साधु बैठा होगा ! बड़ौदेमें रहते समय वारीन्द्रने सुना था, कि नर्मदाके तीरपर एक बहुत ही अच्छा साधु रहता है। इसीलिये उसने कहा, कि चलो, उसीके पास चलें। ऐसा ही हुआ। पर हमलोग यहांपर जिस आशासे आये थे, वह पूरी न हुई। सुननेमें आया, कि साधु बाबा अपनी कटी जीभको उलटकर तालूमें सटाकर दम बन्द कर लेते हैं और इस प्रकार ब्रह्मरन्ध्रसे निकली हुई सुधा-धाराका पान करते रहते हैं। उन्होंने हमें पचास तरहके आसन भी दिखलाये और तरह-तरहकी धौति-वस्तिकी क्रियाएें भी दिखानेसे बाज़ न आये। पर हमारे जले दिलोंको इससे कुछ शान्ति न हुई। दो-तीन दिनों तक

मोटा-मोटी चुपड़ी हुई रोटियों और अरहरकी दालका खूब अच्छी तरह सफाया कर हमलोग उनके आश्रमसे बाहर निकले। पर वारीन्द्र मामूली तौरसे हिम्मत हारनेवाला आदमी नहीं था। उसने कहा,—"देखो, मैंने सुनो है, कि गिरिडीहके पास कहीं कोई अच्छासा साधु रहता है। तुम एकबार वहां जाकर उसकी तलाश करो। तब तक मैं और भी दो चार दिन इधर का ही चक्कर लगाता हूं।" मैं "बहुत खूब" कह कर गिरिडीह की यात्राके वहाने ठेठ मानिकतल्लेमें आ मौजूद हुआ। कई दिन बाद मैंने सुना, कि वारीन्द्रने और भी एक साधुको पकड़ा है। ये साधु बाबा सन् १८५७ के वलवेमें झांसीकी रानीकी तरफसे अङ्गरेजोंसे लड़े थे। उसके बादसे गेरुआ धारण कर चुपचाप भगवद्भजनमें दिन बिता रहे हैं। वारीन्द्रकी मुलाकातसे वह बहुत दिनोंकी बुझी हुई आगकी चिनगारी फिर धधक उठी। वारीन्द्रने उनसे कहा,—"बाबाजी! तुम मुझे एक गेरुआ वस्त्र दो और कानमें कोईसा मन्त्र फूंक दो; फिर तो बाकीके सब काम मैं आपही कर लूंगा।" साधु महाराज वारीन्द्रका बहुत मानते थे। वे झट इसपर राजी हो गये। वारीन्द्रने साधुसे यथाशास्त्र मन्त्रदीक्षा ग्रहण की। मैंने कुछ दिन बाद वारीन्द्रसे पूछा,—"साधुने तुम्हें कौनसा मन्त्र दिया?" वारीन्द्रने उत्तर दिया,"सब भूल गया हूं, यार! याद थोड़े ही है?" जो हो, वारीन्द्रने उन्हें साथ लेकर मध्यभारतके किसी

तीर्थस्थानमें एक आश्रम बांधनेका सङ्कल्प किया था ; परन्तु थोड़े ही दिनोंमें बाबाजी जलातङ्क रोगसे मर गये, इस लिये वह सङ्कल्प काममें न लाया जा सका।

कुछ दिन बाद बारीन्द्र फिर किसी साधुसे साधना सीख-कर देशको लौटा। ये साधु मध्यभारत और बम्बई-प्रान्त-में बड़े सिद्ध महात्मा माने जाते थे। पीछे मैंने भी उन्हें देखा था। इसमें कोई शक नहीं, कि उनमें असाधारण शक्ति थी।

बारीन्द्रके लौट आनेपर हम लोगोंके ऊपर एक आश्रम बांधनेकी धुन बेतरह सवार हुई ; पर मन मुताबिक जगह नहीं मिली। अन्तमें स्थिर हुआ, कि जबतक कोई अच्छीसी जगह नहीं मिलती, तबतक मानिकतल्ले वाले बागीचेसे ही आश्रमका काम लिया जाय।



दूसरा परिच्छेद ।



जब मानिकतल्लेके बागीचेमें आश्रमका काम शुरू हुआ था, तब वहां चार पांच आदमियोंसे अधिक नहीं थे। पर हाथमें एक पैसा भी नहीं,—लड़के सब घरके भगोड़े हैं, इसलिये उनके माँ-बापसे भी कुछ मिलनेकी सम्भावना नहीं। उन्हें और कुछ मिले या न मिले, दोनों समय दो कौर भात तो मिलना अवश्य ही चाहिये ? खैर, कुछ दोस्तोंने हर महीने कुछ सहायता देनेकी प्रतिज्ञा की। इसके सिवा हम लोगोंने सोचा, कि बागीचेमें ही साग-सब्जीकी खेती कर बाकी खर्च इसीसे निकाल लिया जायेगा। बागीचेमें आम, जामुन और कटहलके पेड़ बहुतसे थे। अगर उन्हें मालगुजारी पर दे दिया जाये, तो भी कुछ न कुछ मिलही जायेगा। फिर अपने लोगोंके खाने-पीनेमें कुछ जियादा खर्च भी तो नहीं था! महज़ दाल-भात और एक तरहका साग ही काफी था। अधिकतर दालमें ही दोचार आलू डालकर, उसीका भुर्ता बना लिया जाता और इस तरह साग छौंकनेकी भी किफायत हो जाती थी। समयकी कमी होती, तो खिचड़ी पकाली जाती। और एक

बड़ी भारी सुविधा यह हुई, कि वारीन्द्र उन दिनों कट्टर बाबा जी बना हुआ था। मछलीका काँटा या प्याजका छिलका भी बागीचेमें नहीं आने पाता था। तेल और मिर्चको तो एक बार ही मनाही थी। इसीसे खर्च बहुत कम होगया था।

बारीन्द्रने आमदनीका एक और रास्ता निकाला और वह मुर्गी और बत्तक का पालना। बहुतसे बत्तक और मुर्गियाँ खरीदी भी गयीं; परन्तु देखा गया, कि उनके अण्डे मिलने तो दूर, उनकी भी संख्या दिन दिन कम होती जाती है, क्योंकि कुछको तो स्यार खा जाते हैं और कुछको लोग चुरा ले जाते हैं। इसके सिवा हमारे पड़ौसियोंको भी यहाँ बागीचामें मुर्गी रहनेसे बड़ी दिक्कत मालूम होती थी। एक दिन एक 'हाड़ी महाशय' ताड़ी पिये हुए आये और हिन्दू धर्मकी हिमायत करते हुए दो घंटे तक लेकचर झाड़ गये, जिसका मतलब यह था, कि हिन्दुओंको कभी मुर्गी न पालनी चाहिये। लाचार मुर्गियोंको बेंच देना पड़ा, क्योंकि और कोई उपाय नहीं था। उन हाड़ी बाबूका नाम मैं भूल गया हूं, नहीं तो ब्राह्मण सभा वालोंको पत्र लिखकर उन्हें कोई उपाधि दिलवा देता!

हम लोगोंकी फिजूलखर्ची चायमें ही थी। चाय नहीं मिलने से दुनियाँ उदास दीखती, सारा संसार अनित्य मालूम पड़ता। खासकर वारीन्द्र तो चाय बनानेमें बड़ा ही सिद्धहस्त था। हम

उसकी तैयारकी हुई गुलाबी चाय, नारियलके प्यालेमें डालकर आँखे बन्द करके पीते और उसकी तारीफ किया करते थे। उस समय हमें ऐसाही मालूम पड़ता, कि भारतका उद्धार होनेमें जो कई दिन बाकी हैं, वे चाय पी पी करही बिता दिये जा सकते हैं।

पहलेही दिन बारीन्द्रने हुक्म जारी किया, कि अपनी रसोई आपही पकानी होगी। दो चार जने तो रसोई पकानेकेही डरसे बागीचा छोड़ भाग गये, पर इससे बाहरी आदमियोंको हम लोग बागीचेमें ही थोड़े आने देते थे, खासकर उस समय रुपये पैसेकी तंगी थी, परन्तु मैं सदासे घरपर माँके हाथकी और मेसमें रसोइयेके हाथकी बनी रसोई खाता चला आया। जब साधु था, तब औरोंके घर भिक्षा किया करता था—वह भी पराये हाथोंकी ही रसोई होती थी। आज एकाएक यह बला किधरसे आ पड़ी! बारी बारीसे दो दो जने रसोई पकाने लगे। मुझे भी बीच बीचमें रन्धन विद्याके गूढ़ रहस्योंको लेकर इधर उधर टाँगे घसीटनी पड़ी, परन्तु ब्राह्मणका बेटा होने पर भी मैं इस विद्यामें अच्छी निपुणता कभी न प्राप्त कर सका।

थाली लोटे और कटोरे कटोरियोंके नाम निशान भी उस बागीचेमें नहीं थे। सबके पास एक एक नारियलका प्याला और मिट्टीकी सुराही थी। इन्हेंही खाने पीनेके बाद हम लोग माँज

धोकर रख देते थे। हम सब अपने कपड़े आपही साबुनसे धो लेते थे, जो ज़रा ज़ियादह होशियार थे, वे औरों के ही साफ कपड़े पहन लेते थे।

धीरे धीरे बङ्गालके भिन्न भिन्न ज़िलोंके प्रायः २० लड़के आ पहुंचे। इनमेंसे ५-७ जने तो अधिकांश समय काम-धन्धेमें ही लगे रहते और जो उमरमें कुछ कम थे, वे प्रधानतः लिखते-पढ़ते रहते थे। पढ़ाई धर्मशास्त्र, राजनीति और इतिहासकी ही होती थी और काम था, एकमात्र विप्लवकी तैयारी करना। तरह-तरहके लड़के हम लोगोंकी जमातमें आ मिले। कालेजकी पढ़ाईके हिसाबसे कोई पण्डित था, कोई मूर्ख, किन्तु इस समय मालूम होता है, कि एक तरहकी अपूर्व बात सबके दिलोंमें पैदा हो गयी थी। स्कूलके मास्टर, सबक याद न करनेके कारण जिन लड़कोंको एकदम नालायक कहते हैं, बहुत समय ऐसा देखनेमें आया, कि वे ही सब मनुष्यत्वके हिसाबसे 'लायक लड़कोंसे' भी कहीं अच्छे साबित हुए। अंगरेजीमें जिसे adventurous (असीम साहसिक) कहते हैं, हमारे वर्त्तमान जातीय जीवनमें वैसे लड़कोंको कोई पूछता तक नहीं! दिन-रात तोतेकी तरह सबक रटना, उनसे नहीं बन पड़ता, इसीलिये वे विश्वविद्यालयसे कान पकड़ कर निकाल दिये जाते हैं। लेकिन जहाँ जीने-मरनेका प्रश्न आपहुंचता है, जहाँ हमारे भावी-डिपटी-मार्का लड़के एक पैर भी आगे बढ़ाते

हुए डरते हैं, वहाँ ये ही 'नालायक' 'निकम्मे' 'आवारा' लड़के हंसते-हंसते काम करनेको मुस्तैद हो जाते हैं।

जब बागीचेमें ठीक-ठिकानेसे काम होने लगा, तब लड़कोंको बारीन्द्रकी देख भालमें छोड़कर मैं देवव्रतके साथ-साथ आश्रमके लायक बढ़िया सी जगह ढूंढनेके लिये बाहर निकला। उन दिनों देवव्रतका बागीचेके काम-धन्धेसे वैसा घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं था। उसका मन तीर्थ-स्थानोंमें जाकर साधुओंके दर्शनके लिये व्याकुल हो रहा था, काम-धन्धा उसे जरा भी अच्छा न लगता था।

सबसे पहले इलाहाबाद पहुंच कर हम लोग दो-चार दिनों तक एक धर्मशालामें पड़े रहे। बाजारसे पूरियाँ लेकर खाना और लम्बी तानकर सो जाना—यही दो काम थे। बीच-बीचमें किसी-न-किसी साधु-संन्यासीसे जाकर मिल आते थे। इसी बीच एक स्थानीय बन्धु हम लोगोंको 'झूंसी' दिखलानेके लिये ले गये। वहाँ जाकर हमने देखा, कि गङ्गाके किनारे स्यारकी माँदकी तरह गढ़े खोद कर दो-चार साधु उनमें वास कर रहे हैं। एक जगह देखा, कि एक सिन्दूर लगी हुई राम-मूर्त्ति रखी है, उसके सामने किसी भक्तके चढ़ाये हुए चार-पांच पैसे पड़े हैं और पासही एक साधु, जो सारी देहमें भस्म रमाये हुए हैं, दमेके कारण जोर-जोरसे खांस रहे हैं। मैं ने सुना, कि मिट्टीके

नीचे साधुओंके साधन-भजनके लिये बहुतसे घर बने हैं, किन्तु हमारे उन बन्धुने साधनके ऐसे ऐसे वीभोत्स वर्णन सुनाये, कि देवव्रतका साधु-दर्शनका आग्रह भी बहुत कुछ मिट गया।

प्रयागसे विन्ध्याचल आकर हमलोग कुछ दिनों तक एक धर्मशालामें टिके रहे। मैदानके बीचमें एक झोपड़ा बनाकर वहां भी एक जटा जूटधारी साधु रहते थे। ज्योंही हमलोग उन्हें प्रणाम कर उनके सामने बैठे, त्योंही उनके मुंहसे अनर्गल तत्व कथा और थूक एकही तरह जोरोंके साथ बाहर होने लगा। साधु बाबा खाने पीनेकी कोई चेष्टा नहीं करते। हां, भक्त लोग उनके पास जो कुछ पूजा चढ़ा जाते हैं, वह सब उनका एक भक्त ग्वाला उठा ले जाता है और उसके बदलेमें उन्हें दूधमें साबूदाना पकाकर दे जाता है। बस यही खाकर वे रह जाते हैं। थूक और तत्व कथाका संग्रह कर जब हम लोग धर्मशालामें आये, तब हमने देखा, कि एक गेरुआ-वस्त्र पहने हुई, त्रिशूल धारिणी भैरवी हमारा कम्बल दखल किये बैठी हैं। देवव्रत ब्रह्मचारी मनुष्य ठहरा, स्त्रियोंके साथ एक आसन पर नहीं बैठता, इसलिये वह भैरवीको देख, चक्करमें पड़ गया, पर इस सांझके समय अपनी पर्वतकी सी लम्बी चौड़ी देह लिये हुए बेचारा कम्बल छोड़कर कहां जाये? इसीलिये उसने भैरवीको सिरसे पैर तक एक बार देखकर पूछा,—"आप कौन हैं?" भैरवी,—मैं साधु-

ओंके संग रहना चाहती हूं।" देवव्रत,—फिर हमारे पास क्यों आयीं? क्या आप देखतीं नहीं, कि हमलोग खासे बाबू हैं? धोती पहने हैं, नाक पर सोनेका चश्मा लगाये हुए हैं?" भैरवी,—"सब कुछ है, पर मैं जानती हूं, कि आप लोग छिपे साधु हैं।"

हम लोगोंने उसे बहुत तरहसे समझाया, कि हम लोग न तो वेश बदले हुए हैं, न साधु-संन्यासी हैं, पर भैरवी तो वहांसे टलती न दिखाई दीं। अन्तमें बहुत देर तक तर्क-वितर्क करनेके बाद देवव्रतने ही युद्धमें पीठ दिखायी और वह रात एक पेड़ तले सोकर बिता दी।

परन्तु भैरवी होनेसे ही क्या हुआ? ये थीं तो बङ्गालीकी ही बेटी? सवेरे घूम-फिर कर आने पर हमने देखा, कि उन्होंने न जाने कहांसे चांवल-दाल लाकर रसोई बनानी शुरू कर दी है। दस बजते-बजते हमारे लिये खिचड़ी तैयार हो गयी। कामिनी-काञ्चनके संसर्गसे ब्रह्मचर्यमें बाधा पड़ती है; परन्तु कामिनीके हाथकी पकायी हुई खिचड़ीके बारेमें तो किसी शास्त्रमें निषेध नहीं लिखा है, इसीलिये हम दोनोंने बिना किसी तरहकी आपत्ति किये वह गरमागरम खिचड़ी गलेके नीचे उतार दी। हमारा खाना-पीना हो जाने बाद भैरवी भी खाने बैठीं। मैंने देखा कि

बंगालीकी स्त्रीका स्नेह-क्षुधातुर प्राण इस गेरुएके अन्दरसे भी झलक रहा है !

विन्ध्याचलसे हम लोग चित्रकूट चले गये। स्टेशनपर उतरते-न-उतरते छोटे, बड़े और मझोले—तरह तरहके पण्डे हमारे पीछे पड़ गये। हम लोग तीर्थ दर्शन कर पुण्य लूटने नहीं आये हैं, यह बात हमने उन लोगोंको टूटीफूटी हिन्दीमें बड़ी देर तक वक्तृता देकर समझा दी। पर वे जोंककी तरह चिपके ही रहे। उनके हाथसे छुटकारा पानेकी ही आशासे हम लोगों-ने पण्डोंका मुहल्ला छोड़कर नदीके किनारे एक टूटेफूटे पुराने मन्दिरमें आकर अड्डा जमाया। पर पण्डे भी हार जानेवाले जीव नहीं थे। पाँच सात जने यहां तक हमारे पीछे लगे हुए आये और हमें घेरे रहे। तीर्थकी जगहमें आकर देवताके दर्शन न करे, ऐसा भी तीर्थयात्री कहीं हो सकता है? तीन चार घण्टे बैठे बैठे ऊबकर वे हमें गालियां देते हुए चले गये—केवल एक दस—बारह बरसका छोकरा बड़ा 'सत्याग्रही' निकला, वह तब भी अपनी स्पीच झाड़ता ही रहा। उसने एक हाथ अपने पेटपर और दूसरा हाथ देवव्रतके मुंहके पास ला, नचाते नचाते कहा, "देखो, बाबू! जो जीवात्मा सो ही परमात्मा। मुझे खिलाओ, परमात्मा प्रसन्न होगा।" पेटकी ज्वालाके साथ परमार्थका ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध सुनकर देवव्रत हंस पड़ा।

बोला—"देख, तेरी इस बातका मोल एक लाख रुपया है, पर मेरे पास इस समय उतने रुपये नहीं हैं, इसी लिये मैं इस घड़ी केवल एक पैसा देकर ही तुझे विदा करता हूं।" जीवरूपी परमात्मा, लाचार हो, वही एक पैसा लेकर चलता हुआ।

जिस मन्दिरमें हम लोग पड़े थे, उसके चारों ओर पेड़ोंपर सिवा बन्दरोंके और किसी जीवसे भेंट-मुलाकात नहीं होती थी। वहांसे प्रायः एक मीलकी दूरीपर रीवांके महाराजका बनवाया हुआ बैष्णव साधुओंका एक मठ था। वहां "आचारी" और "बैरागी" इन्हीं दोनों सम्प्रदायोंके बैष्णव साधु रहते थे। कभी कभी उन साधुओंमेंसे किसी किसीसे देखा देखी हो जाती थी।

मैं एक दिन सुबहके वक्त वहां बैठा हुआ था, कि इसी समय एक संन्यासी आ पहुंचे। वे युवा पुरुष थे उमर लगभग ३२।३३ वर्षके होगी। पूछनेपर मालूम हुआ, कि उनका जन्मस्थान गुजरात है और वे गुरुकी आज्ञासे इस ओर घूम फिर रहे हैं। भगवान् ही जानें वे यह बात कैसे ताड़ गये, कि हम लोगोंका राजनीतिके साथ भी कुछ सम्बन्ध है। दो-चार इधर-उधरकी बातें हो जानेके बाद उन्होंने कहा,—"देखो, तुम लोग जो यह सोचे बैठे हो, कि इस तरफके आदमी देशकी अवस्थाको नहीं समझते, वह ठीक नहीं है। समय आने पर देखोगे, कि इधरके

लोग भी भीतर ही भीतर तैयार हैं।" हमलोग चुप चाप यह बात सुनते रहे। दिलमें सोचा, कि देखा चाहिये, अब गिलहरी क्या रंग लाती है? उन्होंने और भी कहा,—"देखो, मैं तुम लोगोंसे एक बात कह रखता हूं। अगर मानो, तो बात लाख रुपयेकी है नहीं तो तीन कौड़ीकी भी नहीं है। जगत्‌में धर्मकी स्थापना करनेके लिये भगवान्‌का अवतार हो चुका है, परन्तु वे अभी तक प्रकट नहीं हुए हैं। उन्हें नर-देहमें अवतार ग्रहण करनेको मजबूर करनेहीके लिये योगी जन साधना करते हैं। वह साधना अबकी बार सिद्ध होगी और तभी भारतके दुःख दूर होंगे।

हमने पूछा,—"आपको यह सम्वाद कैसे मिला?"

संन्यासीने कहा,—"मैं संन्यास लेनेके पहले हनुमानजीकी उपासना करता था। जब बड़े-बड़े साधन करने पर भी कोई फल न हुआ, तब मैं एक बारही निराश हो, मरनेको तैयार हो गया। उसी समय हनुमानजी मेरे सामने प्रकट हुए और यह आशापूर्ण संवाद सुना गये।"

यह बात संन्यासीकी मन गढ़न्त थी या इसके मूलमें कुछ सत्य भी था, यह बात तो भगवान् ही जानें।

सन्यासीसे बिदा मांग कर हम लोगोंने एक बार अमरकण्ट-

कको यात्रा करनेका विचार किया। विन्ध्याचल-पर्वतके जिस स्थानसे नर्मदा निकली है, अमरकण्टक वहीं है। किस स्टेशनसे उतर कर, किस-किस रास्तेसे हम लोग वहां गये थे, यह तो इतने दिनों बाद आज याद नहीं आता, सिर्फ इतना ही याद आता है, कि हम लोगोंने रास्तेमें एक आसामी सज्जनके घर अतिथि रह कर दो दिन खूब डट कर भोजन किया था। बहुत दूर तक टाँगें घसीटनेके बाद तो हम पर्वतके पास पहुंचे ; पर पर्वत अच्छा नहीं मालूम हुआ। मनही न जाने कैसा हो गया। अनेक छोटे-बड़े शिखरों वाले हिमालयका जो मन हरण करने वाला सौन्दर्य है, उसका विन्ध्याचलमें नाम-निशान भी नहीं है। तीन-चार दिनकी चढ़ाईके बाद जब हम लोग अमरकण्टकमें पहुंचे, तब देखा, कि वह आश्रमके योग्य एकबारगी नहीं है। चारों ओर घना जङ्गल है और बीच-बीचमें टूटी-फूटी धर्मशाला-ओंके अन्दर धूनी रमाये हुए साधु लोग गाँजेका दम लगाते देख पड़ते हैं! जहां पहाड़ परसे हर-हर करके नर्मदाकी धारा निकल रही है, वहां नर्मदा देवीका एक छोटासा मन्दिर है, जो मरम्मत बिना बड़ाही भद्दा मालूम पड़ रहा है। किसी समय अमरकण्टक बौद्धोंका तीर्थ था, इस बातके चिन्ह अब भी वहां वर्त्तमान हैं। ब्रह्म-देशके 'पागोदा' की तरह बहुतसे लकड़ीके पुराने मन्दिर वहां मौजूद हैं। किसी-किसीमें अब तक बुद्धकी मूर्त्ति प्रतिष्ठितकी हुई है, किसी-किसीमें और-और सम्प्रदायोंके

साधुओंने बुद्धकी मूर्त्ति हटा कर राम या कृष्णकी मूर्त्ति बैठा दी है। चारों ओर सालका जंगल है, जिसमें बाघोंका भी कम उपद्रव नहीं है। वे आस पासके गांवोंसे प्रायः ही गाय या बकरी पकड़ कर ले जाते हैं। जब बाघ दो-चार आदमियोंको घेर लेते ह, तब रीवां राज्यके सिपाही सौ बरस पहलेकी मुंगेरी बन्दूक लेकर खाली फायरें करके अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं! बाघके मुंहमें पड़ना, एक साधारण बात है—लोग इसके आदी हो गये हैं। जंगलमें घुसनेके पहले वे लोग बाघके देवता की पूजा करते हैं, इस पर भी यदि बाघ पकड़ ले, तो वे उसे पूर्व-जन्मका कर्म्म-फल समझ कर सब्र कर लेते हैं। साधुओंकी भी यही हालत है। पर वे लोग नर्मदाकी परिक्रमा करते समय दल बाँधकर बाहर निकलते हैं। यह नर्मदाकी परिक्रमा, मुझे एक अद्भुत बात मालूम हुई। अमर-कण्टकसे पैदलकी राह नर्मदाके किनारे-किनारे गुजरात तक जाने और फिर वहांसे दूसरे किनारेकी राह लौटनेमें चार-पांच बरस लग जाते हैं। यह काम कितने साधु करते हैं, इसका ठिकाना नहीं। कितनी ही स्त्रियोंको भी हमने इस तरह कष्ट उठाकर परिक्रमा करते देखा है। इसका कुछ फल होता है या नहीं, सो तो नहीं मालूम, पर यह सब देखकर यह विश्वास तो मनमें जमही गया, कि यदि उनकी श्रद्धा और निष्ठाका सौआं हिस्सा भी हम पा जायें, तो मनुष्य हो जायें।

हम अमर-कण्टकके चारों ओर दस-बारह कोस तक जङ्गलों-में घूमते फिरे और कितने ही ऐसे गांव देखे, जैसे गांवोंको संस्कृत-ग्रन्थोंमें चाण्डालोंकी बस्ती कहते हैं। वहांके कुत्ते हमें कोसों तक खदेड़ ले जाते थे। नदीके किनारे-किनारे जाते हुए हमने एक स्थान पर बाघके पैरोंके निशान और तुरतका टपका हुआ खून भी देखा। हाय, यदि उस समय यह बात मुझे मालूम हो जाती, कि मुझे किसी दिन कालेपानीकी हवा भी खानी पड़ेगी, तो वहांसे भाग जानेकी चेष्टा न कर, बाघकी बाट देखता हुआ वहीं बैठ रहता! पर उस यात्रासे बाघ भी न दिखाई दिया और हमें बहुत खाक छानने पर भी आश्रमके योग्य कोई स्थान न मिला। लाचार, हम लोग पहाड़से नीचे उतरे। नीचे आने पर वारीन्द्रकी चिट्ठी मिली, कि जल्दी लौट आओ।



तीसरा परिच्छेद ।



बा रीन्द्रकी चिट्ठी मिलते ही हम लोग तुरन्त बोरिया बधना समेट कर चलते बने। सामानके नाम लोटा, कम्बल और एक एक लाठीके सिवा और कुछ हमारे पास नहीं था। इस लिये बहुत देर लगनेका भी कोई कारण न था। बागीचेमें आकर देखा, कि यहां तो एक बार ही "अश्व लाओ, भस्त्र लाओ, वस्त्र लाओ, शस्त्र दो" की पुकार मच रही है। इधर जो नये नये लड़के आ पहुंचे थे, उनमें उल्लासकरदत्त भी एक था। प्रेसिडेन्सी कालेजके रसेल साहबने बङ्गाली लड़कों-को गाली दी थी, इसी लिये उल्लासकर एक दिन एक जूता बगल में दबाये हुए कालेज गया और रसेल साहबको पीठमें जोरसे जूता मारकर चल दिया, तबसे उसने फिर कालेजका मुंह नहीं देखा। इसके बाद वह कुछ दिन बम्बईके इञ्जिनियरिङ्ग कालेजकी हवा खाकर देशमें लौटा और यहांकी गरम आबोहवामें पड़कर बागीचेके दलमें आ मिला। उस समय किंगसफोर्ड साहब एक एक करके सब स्वदेशी अखबारवालोंको जेल भेज रहे थे। पुलिसकी मार खा खाकर सारे देशके लोग व्याकुल हो रहे थे।

जिसके पास जाओ, वही कहता,—"नहीं, अब बरदाश्त नहीं होता, इन सालोंके सिर उड़ा ही देने होंगे।" और, सलाह मशवरेसे यही निश्चय हुआ, कि इन अङ्गरेजोंमें एन्ड्रू-फ्रेजर ही सबका सरदार है, इस लिये पहले उसीका सिर कलम करना चाहिये। पर लाट साहबके सिरका पता पाना भी तो कोई सहज बात नहीं थी। डिनामाइट कार्ट्रिज लाट साहबको गाड़ीके नीचे लगा दिया जाये, बस सब काम बन जाय। यही सोचकर हम लोगोंने इस बातकी परीक्षा करनेके लिये चन्दननगर स्टेशनके आस पास रेलवे लाइन पर थोड़ासा डिनामाइट-कार्ट्रिज बिछा दिया, परन्तु उड़ना तो दूर किनार, रेल हिली तक नहीं। सिर्फ कार्ट्रिजके फटनेसे फट-फटकी आवाज़ होकर रह गयी, लाट साहबकी नींद भी न टूटी! कई दिन बाद सुननेमें आया, कि लाट साहब रांची या कहींसे स्पेशल-ट्रेन द्वारा कलकत्ते आ रहे हैं। मेदिनीपुरमें जाकर नारायणगढ़-स्टेशनके पास तैयारी होने लगी। बम विद्याके जो पण्डित थे, उन्होंने कहा, कि,—रेलके जोड़के मुंहके नीचे मिट्टीमें बम छिपा कर रख दिया जाये, इसके बाद समय देखकर उसमें "स्लोफिउज़" लगाकर आग लगा दी जाये, बस कुल काम बन जायेगा। पर लाट साहब भी ऐसे कर्म-सांढ़ निकले, कि जिस दिन हमने रेलकी पटरीमें बम छिपा कर रखना चाहा था, ठीक उसी दिन हमारे 'उस्ताद' बीमार पड़ गये और जो लोग किला फतह करने चले, वे एक दम इस

विद्यामें अधकचरे थे। इसीसे बम भी फूटा, लाइन भी टेढ़ी हो गयी, पर गाड़ी नहीं उलटी—हां इंजन कुछ खराब हो गया। तब खड्गपुरसे दूसरा इञ्जिन मंगवा कर लाट साहबकी गाड़ी कलकत्ते लायी गयी।

यह गाड़ी उलटनेका काण्ड समाप्त होने पर चारों ओर अफवाहें उड़ने लगीं, कि यहां पर रूससे बहुतसे "निहिलिस्ट" (रूसी अराजक) आये हुए हैं। एक दिन मैंने अपने एक नातेदारसे, जो एक बूढ़े सरकारी कर्मचारी थे, सुना, कि उन्हें यह बात विश्वस्त सूत्रसे मालूम हुई है, कि यहां रूससे निहिलिस्ट आये हुए हैं। इसी निहिलिस्ट-दलका एक आदमी उनके सामने एक दम सीधे-सादे भले मानसकी तरह बैठा हुआ चाय पी रहा है, यह बात मालूम होने पर वे क्या करते, सो कौन जाने? जो हो, पुलिसने इश्तहार निकाला, कि जो कोई रेल उलटनेकी चेष्टा करने वालेको पकड़ेगा, उसे ५०००) रु० इनाम दिया जायेगा। फिर असामियोंका क्या टोटा था? बहुतसे रेलके कुली पकड़ कर चालान किये गये—कहते हैं, कि उन्होंने पुलिसके सामने अपना अपराध स्वीकार भी कर लिया था! जज साहबने फैसलेमें किसीको पांच और किसीको दस बरसके लिये कालेपानीका हुक्म सुना दिया! पुलिसकी रिपोर्ट पर निर्भर कर जब आज कल बिना बिचारके ही लोग नज़रबन्द कर

लिये जाते हैं और लाट साहबसे लेकर सरकारी प्यादे तकको निर्भ्रान्त प्रमाणित करनेके लिये एक सुरसे राग अलापा जाता है, तब इस नारायणगढ़ वाले मामलेको याद कर हम लोगोंको हंसी भी आती है, रोना भी आता है।

इन दिनों पुलिस वालोंका चक्कर इधर बहुत लगने लगा है, यह देख कर हम लोगोंने सोचा, कि कुछ दिनोंके लिये बाग़ीचेमें बहुतसे लड़कोंको न रखा जाये। उल्लासकर आदि हममें से ४।५ आदमी देशकी सैर करनेके लिये बाग़ीचेसे बाहर निकले। कलकत्ते से गया होते हुए बांकीपुर (पटना) पहुंचने पर उदासी सम्प्रदाय वाले कुछ पंजाबी साधुओंसे हमारी भेंट हो गयी।

गुरु नानकके प्रथम पुत्र, श्रीचन्द, इस सम्प्रदायके चलाने वाले थे। ये लोग सिरमें लम्बी-लम्बी जटा रखाये और शरीरमें भस्म रमाये हुए थे। कमरमें पीतलकी सांकलके साथ कम्बल लपेटे रहते थे। आठों पहर गांजेकी चिलम हाथों-हाथ फिरा करती थी। इनके जो मुखिया थे, वे जब तक १०८ चिलमें गांजेकी न फूंक लेते थे, तब तक उनके मुंहसे बात नहीं निकलती थी। वे तम्बाकू भी पीते थे, पर वह भी ऐसी कड़ी तम्बाकू होती थी, कि यदि हम जैसे आदमी एक कश खींचे, तो सिर चकरा जाये और धरती पर गिर पड़ें। शायद गाँजे और

तम्बाकूका यह सद्व्यवहार देखकर ही गुरु गोविन्दसिंहने सिक्खोंको गांजा और तम्बाकू पीनेकी मनाही कर दी थी !

साधुओंके उस दलमें हम लोगोंने एक १०।१२ बरसका और दूसरा १५।१६ बरसका लड़का भी देखा। हमारे यहांके शौकीन छोकरे जिस प्रकार हजामत बनवा-बनवा कर दाढ़ी-मूंछ निकालनेकी चेष्टा करते हैं, उसी तरह ये भी आटा लगाकर अपने बालोंकी जटा बनाते हैं। यह संसार मायाकी टट्टी है, यह बात वे इसी कम उमरमें कैसे समझ गये, यह जाननेका हमारे मनमें बड़ा कौतूहल हुआ। अन्तमें हमें मालूम हुआ, कि ये लोग ग़रीबके लड़के थे, इसी लिये इनके मां-बापने इन्हें साधुओंकी जमातमें भर्त्ती करा दिया था।

साधु लोग भोरही उठकर स्नान करते हैं और सिरके सिवा सारी देह धोते हैं। दस-बारह दिन पर जटा खोल कर सिर धोनेकी बारी आती है। औरतोंके जूड़ा बांधनेसे इनका जटा बांधना कहीं मुश्किल काम था। किस तरह ऐंठ-ऐंठ कर बालोंकी जटा बांधनेसे वह चूड़ाकी तरह शोभनीय दिखाई देगा, इसका ठीक करना, एक प्रकारकी नियमित ललित शिल्पकला ही समझनी चाहिये। सवेरे ही स्नान कर, धूनी जला, वे लोग शरीरमें भस्म पोतने लगते हैं, साथही-साथ स्तोत्र भी पाठ करते हैं। दिनके आठ नौ बजते-बजते कड़ाह-प्रसादकी तैयारी होने

लगती है। 'जागते पीर' की शिरनीसे लेकर मां-कालीके प्रसाद तक इस जीवनमें हमने अब तक तरह-तरहके प्रसाद खाये होंगे, पर यह कड़ाह-प्रसाद तो एक बारगी ही लामिसाल चीज़ होती है। यह हमारे 'हलुए' का पञ्जाबी संस्करण समझिये। उसे खातेही खाते यह बात भासने लगती है, कि इस संसारमें सब कुछ मिथ्या है, केवल यही कड़ाह-प्रसाद सार-पदार्थ है! साथही मन भक्ति रससे भीगकर उदास हो जाता है। दोपहर और रातको मोटी-मोटी पर नरम-नरम, चुपड़ी हुई पंजाबी रोटियां और दाल खानेको मिलती। यह सब तोहफा माल चाबते हुए हम लोगोंके चेहरे पर देखते-देखते गहरी ललाई छा गयी! रह-रह कर यही जीमें आता, कि अब मानिकतल्ले के बग़ीचेकी उस कम्बख्त खिचड़ी पर गुज़ारा करनेके लिये जानेका कोई काम नहीं है। इन्हीं साधुओंके साथ जटा-जूट रखाये हुए वैराग्य साधनामें लग जाना चाहिये। पर जिसकी किस्मत फूटी होती है, उसे भला इतना सुख कब नसीब हो सकता है?

नेपालमें 'धुनीसाहब' नामक उदासी-सम्प्रदायका एक तीर्थ-स्थान है। ये साधु उसी तीर्थके दर्शन करने जारहे थे। हम-लोगोंने भी उन्हींके साथ जानेका विचार किया; परन्तु उस समय हमारे पुण्यमय शरीरपर गेरुआ कपड़ा पड़ा हुआ था, और ये लोग गेरुएके बड़े भारी विरोधी थे। गेरुआधारी साधुओं

पर उनका बड़ा भारी साम्प्रदायिक विद्वेष था। वे अपने भस्माङ्ग-धारी अवधूत-मार्गको ही श्रेष्ठ समझते थे। वह बात हम लोगोंको मालूम नहीं थी। अगर जानते, तो गेरुआ उतार-कर राख ही लपेटे रहते। पर अब क्या किया जाये? एक चतुर और बूढ़े साधुने इस जटिल समस्याकी मीमांसा करते हुए कहा,—“यदि तुम लोग हमसे दीक्षा लेकर हमारे सेवक बन जाओ, तो हमलोग गेरुआ पहननेका अपराध क्षमाकर देंगे—।”

हम लोगोंने भक्तिपूर्ण गद्गद्-कण्ठसे यह बात स्वीकार कर ली। हमारी दीक्षाकी तैयारी हुई। एक साधु एक बड़ेसे कटोरेमें चीनी घोल लाये। वे ही इनके महन्त थे, अतएव उन्होंने उस शरबतमें अपने पैरका अंगूठा डुबोकर हमें पीनेको दिया। हमलोग जब उसे घटाघट पी गये, तब वृद्धने “एक ॐकार सत्नाम कर्त्तापुरुष” आदि मन्त्र पढ़ते हुए हमारी पीठ ठोंकी और कहा, कि बस आजसे तुम लोग उदासी-सम्प्रदायमें ले लिये गये। दीक्षा भली भांति पूरी हो जाने पर हमारा गेरुआ पहननेका पाप दूर हो गया! हमने भी भक्ति, विस्मय और श्रद्धाके साथ अपने नये गुरुके पैरोंकी धूलि माथे पर चढ़ायी और कड़ाह-प्रसादकी खोजमें निकले।

फिर तो हम पांच-सात बंगाली और वे तीस पैंतीस पञ्जाबी साधु, एक साथ तीर्थ-दर्शनको चले। पर जब रेलसे

उतर कर पैदल चलनेकी बारी आयी, तब मालूम हो गया, कि यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है। कुशीनदीके किनारे-किनारे घने जङ्गलकी राह प्रतिदिन १५।१६ कोसोंकी यात्रा करते करते हमारे पैरोंमें छाले पड़ गये। पर वे साधु न तो थके, न हारे, न उन्होंने कभी कोई कातर-वचन मुंहसे निकाला। वे उस कड़ी धूपमें लगातार बड़ी आसानीसे रास्ता तै करते चले।

"तराई" पार कर हमलोग क्रमशः नेपालके एक छोटेसे शहर में आ पहुंचे। उस स्थानका नाम हनुमान-नगर था। वहांके रहनेवाले प्रायः सभी हिन्दुस्थानी थे—मारवाड़ियोंकी बहुतसी दूकानें भी थीं, पर राजकर्मचारी सभी गुर्खे थे। शहरकी सड़कें भी खूब साफ-सुथरी थीं—बड़ी-बड़ी सड़कोंके किनारे फुटपाथ भी बने हुए थे। नेपालको हमलोग लड़कपनसे ही जंगली देश समझते थे। आज वह धारणा बहुत कुछ बदल गयी। हमलोग स्वाधीन हिन्दूराज्यमें आ पहुंचे हैं, इस बातको सोच-सोचकर मन नाचसा उठा। हमलोगोंने बड़ी भक्तिके साथ नेपालकी भूमिमें सिर टेका और मुंह खोलकर बड़ी देर-तक स्वाधीन देशकी हवा खायी। देश सचमुच बड़ा ही सुन्दर है।

पहाड़ी गांवके पाससे होकर जाते समय हमने देखा, कि खपरैलोंके मकान, हमारे देशके मकानोंसे कहीं अधिक सुन्दर

मालूम होते हैं। जिधर देखो, उधर ही मानों सौन्दर्यकी तरङ्ग उठ रही है, कहीं भी उदासी या गरीबीका नामोनिशान नहीं है। गांववाले साधु-सन्तों पर बड़ी भक्ति रखते हैं। एक दिन चलते-चलते मुझे बुखार आ गया, इसलिये मैं एक गांवके पास ही मैदानमें पड़ा हुआ था। मेरा साथी गांवके भीतरसे जल लाने गया और अपना बड़ासा लोटा दूधसे भर लाया। भला भूखे-प्यासे साधुको भी पानी ही पिलाया जाता है? मैंने सुना, कि नेपालमें साधुओंकी बड़ी चलती है। भूखा साधु चाहे जहांसे खानेको ले आ सकता है। इसके लिये सरकार उसे दण्ड नहीं देती।

"धुनीसाहब" में पहुंचकर हमने देखा, कि चारों ओर केवल सालके बन हैं। एक उदासी साधुने, जिनका नाम बाबा प्रीतमदास था, बहुत दिन पहले यहां सिद्धि लाभ की थी। उनकी धुनी अबतक वहां जल रही है। इसी लिये उस स्थान-का ऐसा नाम पड़ा है। हमने और भी तरह तरहकी कहा-नियां सुनीं। सुननेमें आया, कि बाबा प्रीतमदासके दो चेलोंने एकबार आम खाना चाहा, बस बाबाने उसी समय सालके पेड़में आमके फल लगा दिये। तबसे उस पेड़में एक-दो आमके फल फल ही जाते हैं। सच है, गांजेकी सिद्धि मामूली बात थोड़े ही है!

तीन दिनोंतक उस सिद्धिपुरीमें रह कर हमलोग फिर नर-लोकमें चले आये। उन दिनों बांकीपुरमें हमारे दो चार दोस्त डेरा जमाये हुए थे। उन लोगोंने हमारे रहनेके लिये राजगृहमें मठ बनवा देना चाहा ; पर बंगालकी भूमिमें हमारे प्राण बसे हुए थे, इसी लिये हमलोग देशको लौट आये। आने पर एक अखबारमें पढ़ा, कि किसीने ढाकेके मजिस्ट्रेको गोली मारी है। सोचा, कि अबकी वार मामला वेढब है !

वागीचेमें आकर देखा, कि वारीन्द्र वहां नहीं है—सूरतकी कांग्रेसमें शामिल होने गया है। सूरतकी कांग्रेसमें इस बार घोर लङ्काकाण्ड मचनेवाला है, यह बात हमलोग मेदिनीपुरकी कानफरेन्समें ही समझ गये थे। दो-तीन दिन वाद वारीन्द्र लौट आया। सूरतमें नरम, गरम, अति-गरम—सभी तरहके नेता इकट्ठे हुए थे। उन लोगोंसे वातचित कर वारीन्द्रने जो मुख्य वात मालूम की, वह उसने एक ही वातमें हमें वतला दी। उसने कहा,—"चोर हैं—सबके सब सुसरे चोर हैं !"

हम सब एकही स्वरमें बोल उठे,—"क्यों ! क्यों ? क्यों ?"

वारीन्द्रने कहा,—"अब तक ये सब हमें झाँसे पट्टीमें ही रखे हुए थे। कहा करते थे, कि सभी तैयार हैं, केवल बङ्गालके जगनेकी राह देख रहे हैं, पर भैया ! हमने तो कांग्रेसमें जाकर

ढोलके भीतर केवल पोल ही पोल देखी, कहीं कुछ नहीं है। दो चार छोकरे कुछ करना भी चाहते हैं, तो बड़ोंसे छिपा कर। मैं सुसरोंको खूब खट्टी मीठी सुना आया हूं।"

हम सदासे सुनते आते थे, कि मराठोंका दल एकदम कमर कसकर तैयार है; पर आज उस बातको यों उड़ जाते देखकर जी बैठ गया : पर वारीन्द्रने जोशके साथ कहा,—"कुछ परवा नहीं! यदि और लोग साथ दें, तो दें, नहीं तो हम लोग अकेले ही चलेंगे। हम पांच बरसके भीतर बङ्गालमें ही भयानक उत्पात मचा देंगे—लड़ाई छेड़कर दिखा देंगे। बस तुम लोग आजसे ही लड़कों को भर्त्ती करनेका काम शुरू करदो!"

फिर क्या था? चारों ओर हलचल सी मच गयी। धीरे धीरे नये नये छोकरे आ आकर भर्त्ती होने लगे। पर कई कारणोंसे हमें यह सन्देह होने लगा, कि हमारे पीछे पुलिस भी लगी हुई है। लड़कोंको भिन्न भिन्न स्थानोंमें रखनेका भी प्रबंध किया गया, पर इतने कियायेके मकान लेनेको पैसे भी तो चाहियें? वह कहांसे आयें? उनके खाने पीनेका ही खर्च चलना मुश्किल था! अन्तमें यही स्थिर हुआ कि बैद्यनाथके पास ही मैदानमें एक छोटा सा मकान किराये पर लेकर वहीं बमका अड्डा लेजाना चाहिये। बागीचेमें प्रधानतः नये नये लड़कोंके पढ़ने लिखनेका स्थान हो रहा, बमके अड्डे का महन्त उल्लासकर बनाया

गया । मैं बागीचेमें रहकर बुढ़िया नानाकी तरह लड़कोंको सम्हालने लगा । वारीन्द्र सदाका कामकाजी आदमी ठहरा—उसे एक जगह बैठना नसीब ही न होता था । वह सब जगह कार्यके केन्द्रोंमें घूम फिरकर सबकी निगरानी करने लगा ।

इसी समय एक दुर्घटनाके कारण मेरा मन बड़ा दुखी हो गया । एक लड़का अकस्मात् मर गया । हम लोगोंके पास जितने लड़के थे, सबमें वही बुद्धिमान् मालूम होता था । उसका स्वभाव ही कुछ ऐसा था, कि जो उसे देखता, वही उसे चाहने लगता । उसके मरनेका हाल सुनते ही मेरे सारे शरीरमें बिजलीसी दौड़ गयी । एक प्रकारके अन्ध-राग और क्षोभसे मन भर गया । रह रहकर जी रो उठता और कहता,—"जाने दो सबको चूल्हे भाड़में ।"

मैं उसे देखने वैद्यनाथ भी गया हुआ था, पर वहां मन न टिका । मैं समझ गया, कि अन्धेरी राह और भी अन्धेरी होती जाती है !

परन्तु उपाय नहीं है—रास्ता तो चलना ही पड़ेगा । भूखों रहकर, आधा पेट खाकर, विपद् झेल कर, प्रियजनकी भीषण मृत्यु होते हुए भी यह दुर्गम पथ तो पार करना ही पड़ेगा ! इस विवाहका मानों यही मन्त्र है !

बाहरका काम काज खूब धड़ल्लेसे चलने लगा, किन्तु मन में न जाने कैसी एक शक्तिका अभाव मालूम पड़ने लगा। मैं सोचता,—"जिस अकूल समुद्रमें हमने डुब्बी लगायी है, उसका अन्त कहां जाकर होगा? यह जो हम लोग इतने लड़कोंको क्रमशः मृत्युके मुंहमें लिये जा रहे हैं, वह क्या अच्छा है? क्या हमारे मनसे सचमुच मृत्युका भय भाग गया है? यदि ऐसा हो भी, तो दिनपर दिन अन्धेकी तरह हम इन लड़कोंको कहांतक खींच ले जायंगे? यहां तो अपनी ही आखोंको रास्ता नहीं सूझता।" इन दिनों बारीन्द्रके मनमें कैसे विचार उठ रहे थे, मैं ठीक नहीं जानता। मैंने अबतक उसे किसी दुःसाहसिक कार्यमें पीछे पैर देते नहीं देखा। पर हाँ, यह तो जरूर मालूम होता था, कि वह कभी कभी अपने भीतरसे शक्ति-संग्रह कर लानेके लिये व्याकुल हो उठता था। किसीके ऊपर थोड़ा निर्भर करनेसे मन निश्चिन्त सा रहता है और सिरका बोझ हलका हो जाता है,—शायद इसी लिये उसने उन साधु बाबाके पास यहाँ आनेके लिये पत्र लिखा, जिनसे उसने गुजरातमें जा कर दीक्षा ली थी।

सन् १९०८ ई० फरवरी महीनेमें साधुबाबा मानिकतल्लाके बागीचेमें आ पहुंचे। दो चार दिन हम लोगोंका रङ्गढङ्ग देख कर वे बोले,—"तुम लोगोंने जो रास्ता पकड़ा है, वह ठीक नहीं

है, अशुद्ध मन लेकर इस काममें लगोगे, तो व्यर्थकी खून खराबी भर होगी। ऐसी अवस्थामें जो लोग देशके नेता बनना चाहते हैं, उन्हें अन्धेकी तरह काम नहीं करना चाहिये। जिनकी आँखोंके सामनेसे भविष्यत्‌का परदा हट गया है—जिन्होंने भगवानके यहाँसे प्रत्यादेश पाया है—वे ही इस कार्य के यथार्थ अधिकारी हैं। तुममेंसे कुछ लोगोंको यह प्रत्यादेश पानेके लिये साधना करनी होगी।"

साधनाकी बात सुनते ही लड़के एक दूसरेका मुंह देखने लगे। यह प्रत्यादेश किस चिड़ियाका नाम है? हम अङ्गरेजों से लड़ेंगे, इस झगड़ेमें भगवान्‌को घसीटनेका क्या काम है?

साधुने कहा,—"यह साधना सबके लिये नहीं, केवल नेताओंके ही लिये है। जो सारे देशको राह दिखाने जा रहे हों, उन्हें स्वयं उस रास्तेको अच्छी तरह देख लेना चाहिये। देशको स्वाधीन करनेके लिये खूब खून खराबी करनेकी ज़रूरत है—यह बात ग़लत भी हो सकती है।"

बिना रक्त-पातके देशोद्धार हो जायगा, यह बात हम लोगोंको चण्डूखानेकी गप्पसी ही मालूम हुई। हम लोगोंने अक्लमन्दीकी हंसी हंसते हुए कहा,—"क्या ऐसा भी कभी हो सकता है?" साधुने कहा,—"देखो, भाइयो! मैं जो बात कह रहा हूं, वह

खूब समझ-बूझ कर ही कह रहा हूं। तुम लोग जो उद्देश्य सामने रखे हुए हो, वह सिद्ध होगा, परन्तु जिस उपायसे सिद्ध करना चाहते हो, उस उपायसे नहीं होगा। अपनी बीस वर्षकी साधनाके प्रभावसे मैंने यह बात मालूम की है। एक दिन ऐसा आयेगा, कि अवस्थाके फेरसे समस्त राज्य-भार आपसे आप तुम्हारे हाथोंमें आ जायेगा। तुम्हें सिर्फ शासन-व्यवस्थाकी रीति निश्चित करनी होगी। तुम लोगोंमें से कुछ लोग मेरे साथ चलो—यदि साधनाका कोई प्रत्यक्ष फल देखनेमें न आये, तो लौट आना।"

उस दिन साधुके चले जाने पर हम लोगोंमें खूब तर्क-वितर्क होने लगा। वारीन्द्रने गरदन हिला कर कहा,—"हरगिज़ नहीं—मैं यह काम बन्द नहीं कर सकता। बिना रक्त-पातके भारतका उद्धार होगा, यह महज़ उनका खयाल है। मैं उनकी सब बातें मानता हूं, पर इसे नहीं मान सकता!"

पर मेरा मन साधुबाबाकी ओर झुक गया था। मैं सोचता था, कि एक बार परीक्षा करके देखना चाहिये, शायद कोई सुगम पथ मालूम पड़े। अपने मनको मनाये बिना तो किसी काममें चित्त नहीं लगता।

मैंने और भी दो-तीन लड़कोंको साथ लेकर साधुके सङ्ग

जानेका बिचार किया। साधु और भी एक दिन वारीन्द्रको समझाने आये, पर दूसरेकी नसीहत माननेका तो वारीन्द्रको बिलकुल अभ्यास ही नहीं है, इसलिये वह किसी तरह सीधे रास्ते पर न आये। जब लाख कहने सुनने पर भी बाबाजी उसे समझा न सके, तब नाराज़ होकर बोले,—"देखो, यदि तुम लोग इस रास्तेसे अलग न होगे, तो शीघ्रही तुम्हारे ऊपर बड़ी भारी विपद् आयेगी।"

वारीन्द्र दोनों हाथ घुमाकर बोला,—"अरे बहुत होगा, तो फांसीपर लटका दिया जाऊंगा। उसके लिये तो मैं तैयार बैठा ही हूं।"

साधुने सिर हिला कर कहा,—"जो भोग भोगना पड़ेगा, वह मृत्युसे भी भयङ्कर है!"

बस यहीं उस दिनकी सभा भङ्ग हो गयी। साधुने अपने लौट जानेका दिन निश्चित किया, परन्तु ज्योंही ज्यों वह दिन पास आने लगा, त्यों त्यों मेरे पैर बग़ीचेमें गड़ते गये, वहांसे वे जाना ही नहीं चाहते थे। मैं स्त्री, पुत्र, घर, द्वार, सबको छोड़ आया हूं—यह काम मुझे वैसा कठिन नहीं मालूम हुआ था; परन्तु अब रह-रह कर मन यही कहने लगा, कि जो लोग हमें देख-देखकर मां-बापका स्नेह, भविष्यत्की आशा

और प्राणोंकी ममता तक बिसारे बैठे हैं, उन्हें छोड़कर क्या भाग जाना चाहिये? इस बागीचेके साथ अनेक आशा, आकांक्षा, प्रीति और उत्साह मिला हुआ है, इस अपनी लगायी हुई बेलको छोड़कर किसी अनजाने देशमें अपना लक्ष्य ढूंढ़ने क्यों जाऊं? बस, उस दिन साधु बाबाके साथ जाना नहीं हो सका। मार्च महीनेके मध्यमें वे एकदम उदास होकर चले गये।



चौथा परिच्छेद ।





धुके चले जाने पर मैं फिर अपने टूटे दिलको जोड़कर काममें लग गया। उस समय हम लोगोंने स्थिर किया था, कि देश भर में जहा तहां अपना केन्द्र स्थापित करेंगे और देशकी शक्तिको इकट्ठा कर विप्लवका कार्य आरम्भ कर देंगे : किन्तु उस समय देशवालोंके सिरपर खून सवार था। सुदूर आदर्शकी ओर लक्ष्य रखकर चुपचाप समस्त लज्जा, अपमान और कष्ट सह लेना, कितनी कठोर साधनाका काम है, यह भुक्तभोगीके सिवा और कौन समझेगा? उस समयतक देशको ऐसी शिक्षा नहीं मिली थी। पर क्या आज भी वह शिक्षा मिल गयी है?

धीरे-धीरे रुपये-पैसेका प्रबन्ध करना मुश्किल होने लगा। काम बढ़ रहा है, लड़कोंकी संख्या बढ़ रही है, पर रुपया कहां है? एक-आध आंखका अन्धा, गांठका पूरा, यजमान पकड़े बिना कैसे काम चलेगा? परन्तु उन्हें खुश करनेके लिये दो बड़े या किसी छोटे लाटपर बम फेंकना ही पड़ेगा!

आने-जानेमें बहुत खर्च हो जाता है, इसी लिहाजसे हम-लोग देवघरसे बमका कारखाना कलकत्तेमें उठा लाये। लोगों-का आना-जाना उधर कम होता है, इसलिये पुलिसवालोंकी निगाह भी जल्दी न पड़ेगी, इसीलिये हमलोगोंने भवानीपुरमें एक मकान लेकर उसीमें पुराने लड़कोंको रखा और नये- नये लड़के बागीचेमें ही रहने लगे।

पर हजार कोशिशें करने पर भी हम पुलिसकी नजरसे न बचने पाये।

नाना कारणोंसे हमलोगोंको सन्देह होने लगा, कि पुलिसवाले हमें सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगे हैं। मैंने देखा, कि तरह-तरहके अपरिचित मनुष्य बागीचेके आस-पास सदा फेरी लगाते रहते । रा चलते समय भी दो-एक पीछे लग जाते हैं। एक दिन रास्तेमें चलते-चलते पीछे फिर-कर देखा, कि बड़ी-बड़ी और ऊपरको चढ़ी हुई मूंछोंके ऊपरसे दो गोल-गोल आंखें मेरी ओर टकटकी लगाये देख रही हैं। मैं जिधर जाता, उधर ही वे आंखें भी जाती। अन्तमें उस दिन किसी तरह भीड़में घुसकर मैंने अपनेको उस शनिकी दृष्टिसे बचाया!

मानिकतल्लेके सब-इन्स्पेक्टर साहब भी बीच-बीचमें बागीचेमें

आते और हमलोगोंसे बातें किया करते थे। पर हम लोगोंका उनपर व्यर्थका सन्देह था। वे बागीचेको अन्ततक 'ब्रह्मचारियोंका आश्रम' ही समझते थे।

इसी तरह एक महीना और बीत गया। अन्तमें मुजफ्फरपुरमें बम फूटनेके साथ ही साथ बागीचेकी भी आयु पूरी हो गयी!

* * * *

उस दिनकी बात मुझे जिन्दगी भर याद रहेगी। एक तो, बैशाखका महीना था, कड़ी धूप पड़ रही थी—दूसरे, सारे दिन हम इधरसे उधर चक्कर लगाते फिरे थे। इस लिये जब सांझको हम लोग बागीचेमें लौटे, तब औरोंकी बात तो राम जाने, मेरे तो हाथों, पैरों और पेटमें एक साथ ही चिनगारीसी लग रही थी—मैं व्याकुलसा हो रहा था। उस समय यदि स्वयं यम भी, अपने भैंसे पर सवार हो, मुझे खदेड़ने आते, तो भी शायद मैं भाग न सकता। सच पूछिये, तो सबकी ऐसी ही दशा थी। पर पापी पेट बड़ा चाण्डाल है—बिना दो कौर खाये नहीं चलता। तिसपर हमारे यहां न तो रसोइया था, न नौकर—फिर किस तरह घूम--फिरकर बाहरसे जाते ही हमें परोसी थाली मिल जाती? यहां तो खाना पकाना, कपड़ा धोना, झाड़ू-बुहारू करना—सब अपने हाथों होता था। खैर लड़के झटपट खाना पकाने बैठे और हमलोग कल्पनाके रथपर

सवार हो भारत-उद्धार करने चले, परन्तु उस दिन हमारे ऊपर शनीचरकी ऐसी टेढ़ी नजर पड़ी थी, कि भात उतारते समय हंड़िया फूट गयी और सारा भात मट्टीमें सन गया। लड़के कह-कहा लगाकर हंसने लगे। मैं समझ गया, कि आज भाग्यमें भोजन नहीं बदा है। लाचार मैं तो पेट-पर तीन बार ताली बजा कर औंधे मुंह सो रहा; पर वारीन्द्र सदाका उद्योगी पुरुष ठहरा, वह भला कब माननेवाला था? वह उसी रातको लकड़ीके अभावमें अखबार जला जलाकर भात पकाने बैठा। रातको ग्यारह बजे ज्योंही हम लोग खाने बैठे, त्योंही हमारे एक दोस्त कलकत्तेकी सैर कर हँसते कूदते आ पहुंचे। हमने पूछा,—क्या हाल है? वे बोले,—मैंने सुना है, कि शीघ्र ही पुलिस इस बागीचेकी खानातलाशी करेगी। इस लिये हमें झटपट यह स्थान छोड़ देना चाहिये। खैर, यही सही—परन्तु इस रातको टांग पकड़ कर खींचने पर भी शायद ही कोई बागीचा छोड़नेको राजी हो, इस लिये निश्चय हुआ, कि कल सवेरे ही सभी अपनी अपनी राह देखेंगे, परन्तु वारीन्द्रने उसी रातको कुछ लड़कोंको साथ लेकर कुदाल से गढा खोदकर इधर-उधर पड़ी हुई राइफलों और रिवालवारोंको मट्टीके अन्दर छिपा डाला। हमारे सोते- सोते रातके बारह बज गये।

* * * *

रातके चार बजे तक कुछ तो गरमीसे और कुछ मच्छड़ोंके उपद्रवसे मैं बिछावन पर पड़ा पड़ा छटपटाता रहा। इसी समय मैंने कई आदमियोंके सीढ़ी चढ़नेकी आहट सुनी। थोड़ी ही देर बाद दरवाजे पर खट खटकी आवाज सुनाई दी। बारीन्द्रने झटपट उठकर दरवाजा खोल दिया। एक अपरिचित अङ्गरेजने पूछा,—"Your name?" (तुम्हारा नाम?)

उत्तर,—"बारीन्द्रकुमार घोष।"

हुक्म हुआ,—"पकड़ो इसको।"

मैं समझ गया, कि भारत उद्धारका पहला पर्व यहीं समाप्त हो गया! तो भी जब तक साँस, तब तक आस। पुलिसवाले घरमें घुसकर जिसे देख पाते, उसीको पकड़ लेते, पर अभी तक वहाँ अन्धेरा ही था। मैंने सोचा,—'बस, Now or never!' (आज नहीं, तो फिर कभी नहीं!) एक दूसरे दरवाजेसे बाहर बरामदेमें आकर मैंने देखा, कि चारों ओर रोशनी लिये पुलिसके पहरेदार खड़े हैं। रसोईघरकी टूटी हुई खिड़कीकी राहसे कूद कर बाहर जा सकता था, पर वहाँ पहुंचकर नीचेकी ओर झाँका, तो दो पुलिसके पहरेदार खड़े दिखाई दिये। ठीक है, "भाग्य-हीनाः यत्र यान्ति तत्र यान्त्येव चापदः।" अभागे जहाँ जायें, उन्हें सब जगह विपद् घेरे ही रहती है। लाचार, मैं बरामदेके पास ही एक छोटेसे घरमें घुस पड़ा। उस घरमें टूटेफूटे लक्कड़

काठ भरे थे, सिवा चूहों और छछूंदरोंके वहाँ और कोई नहीं रहता। मैंने अच्छी तरह नज़र फेरकर देखा, तो खिड़कीके पास ही एक टाटका परदा लटकता हुआ दिखाई दिया। मैं उसकी आड़में छिपकर पुलिसवालोंकी कार्रवाई खिड़कीके अन्दरसे देखने लगा। वह रात तो मानों काटे नहीं कटती थी!

धीरे धीरे कौए बोलने लगे। एक आध कोयलें भी कुहुक उठीं। पूरबकी तरफ आसमान बिलकुल साफ होजाने पर मैंने देखा, कि बागीचा लाल पगड़ीवालोंसे भर गया है। कई गोरे सार्जेण्ट भी हाथमें बड़ी २ चाबुकें लिये घूम रहे हैं। कई कोचवान-साईस, जो उसी मुहल्लेके रहनेवाले थे, खानातलाशीके गवाह बनानेके लिये पकड लाये गये थे। वे एक मोटे ताज़े इन्स्पेक्टर साहबके पीछे पीछे "हुजूर! हुजूर!" कहते हुए घूम रहे थे। तालावके पास ही एक आमके पेड़के नीचे हमारे हथकड़ीसे जकड़े हुए लड़के, दो-दो आदमी एक साथ, बैठाये गये थे। उल्लासकर उनके बीचमें बैठा हुआ इसी बातकी गवेषणामें लगा हुआ था, कि इन्स्पेक्टर साहबका वजन तीन मन होगा या साढ़े तीन मन?

क्रमशः छः बज गये—सात भी बजे; पर मैं उसी तरह पर्दानशीन बीबी बना बैठा रहा! सोचा, कि इस बार शायद

मैं बच जाऊंगा, पर वह व्यर्थकी आशा देर तक न रही। हमारे वही मोटे ताजे इन्स्पेकृर साहब जूता मचमचाते, धरती कम्पाते हुए मेरे उस मकानका दरवाजा खोलकर भीतर घुस आये। कहीं मेरे सांस लेनेकी वे आहट न पा जायें, इसी डरसे मैंने नाक बन्द कर ली ; परन्तु बलिहारी है पुलिसकी घ्राणशक्ति की ! साहबने सीधे आकर मेरी लाज बचानेवाले परदेको हटा दिया ; फिर तो चारों आखें मिल गयीं ! वहां, वह आंखोंका चार होना भी कैसा स्निग्ध, कैसा मधुर, कैसा प्रेममय था ! साहब तो एकबारगी दिग्विजयी वीरकी तरह बड़े उल्लासके साथ खूब जोरसे "Hurrah" (हुर्रे) कह उठे ! इस ध्वनिके साथ ही उनके चार-पांच अनुचर वहां आ पहुंचे। किसीने मेरे पैर पकड़े, किसीने हाथ और किसीने सिर। इसके बाद वे मुझे कन्धे पर उठाकर जयध्वनि करते हुए ठेठ वहां ले आये, जहां हथकड़ी बन्द लड़के बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे लड़कोंकी जमातके बीचमें बैठा दिया। इसके बाद मेरा हाथ बांधनेका हुक्म हुआ। जो पुलिसवाला मेरा हाथ बांधने आया, वह तो हमारे 'वन्देमातरम्' आफिसका पुराना नौकर निकला ! भगवन् ! यह क्या माजरा है ? उसने न जाने कितनी बार मुझे 'बाबू, बाबू' कहकर सलाम किया होगा, चाय बना-बना कर पिलायी होगी। आज मेरा हाथ बांधते हुए उसने शर्मसे मुंह फेर लिया !

इधर खानातलाशी करते करते कल रातके समय भट्टीके अन्दर छिपाये हुए म बऔर राइफलें बरामद हो गयी। और कहीं कुछ छिपाया हुआ है या नहीं, यह जाननेके लिये पुलिस-वाले लड़कों पर अत्याचार करने लगे, यह देख वारीन्द्रने इन्स्पेक्टर-जेनरल प्लउन साहबसे शिकायत की ; पर वे उस बातको हंसीमें उड़ाकर बोले,—"You must not expect too much from us. अर्थात् हमलोगोंसे जरूरतसे जियादः रियायतको उम्मीद न रखो !"

उस दिन हम लोग अलग-अलग थानोंमें रखे गये। तीन पूरियोंके सिवा और कुछ खाना नसीब न हुआ। दूसरे दिन सबेरे ही सी० आई० डी० पुलिसके आफिसमें जाने पर मैंने सुना, कि बाग़ीचेके सिवा और भी दो-तीन जगहोंमें खानातला-शियां हुई हैं और ऐसे भी बहुतसे पकड़े गये हैं, जिनका हमारे साथ कोई लगाव नहीं था। इधर डिपटी सुपरिण्टेण्डेण्ट राम-सदय बाबूने हम लोगोंको बुढ़िया नानीकी तरह प्यारके साथ मेलमें लाना शुरू किया। वे अपने हाथमें बंधी हुई एक बड़ी सी ढोलकनुमा तावीज़ निकाल कर हमें दिखलाते हुए बोले,—"मैं प्रसिद्ध साधक कमलाकान्तका बंशधर हूं—इस तावीज़के अन्दर उन्हींकी सर्व-विघ्न विनाशिनी पद-धूलि विराजमान है।" हम लोगोंके सिर परसे वह तावीज़ छुआ कर कभी हंसते और

कभी रोते हुए वे कमलाकान्तके वंशधर महाशय कहने लगते, कि तुम लोगोंका मुझसा हितू तीनों लोकमें कोई न होगा। मैं तुम लोगोंके कार्यसे सहानुभूति रखता हूं; पर क्या करूं, पेटसे लाचार हूं। इत्यादि। बाग़बाज़ारके एक और इन्स्पेक्टर साहब आंखोंसे आंसू टपकाते हुए लड़खड़ाती आवाजमें हम लागोंको जंचाने लगे, कि हमें गिरफ़्तार कर उन्होंने जो कसाईपन किया है, उसके लिये उनको हृदयसे पछतावा है। कहना व्यर्थ है, कि हम लोगोंसे कुसूर कबूलवाने (Confession) के लिये ही इतना प्रपञ्च रचा जाता था। कानूनका हम लोगोंको जैसा प्रचण्ड ज्ञान था उससे उन लोगोंको हमारा सत्यानाश करनेमें देर न लगी। उल्लासकरने कहा, कि जो सब बाहरी आदमी बिना कारणही हमारे साथ-साथ गिरफ़्तार किये गये हैं, उनको बचानेके लिये सब कुछ सच-सच कह देना चाहिये। उल्लासकरको यह भरोसा था, कि सच-सच कह देनेसे ही धर्मात्मा पुलिस कर्मचारी हमारी बातें मान कर उन बेचारोंको छोड़ देंगे। वारीन्द्रने कहा,—"हमारा किया-कराया तो सब मिट्टी हो ही गया, अब देश वालोंको यह बात बतला देनी चाहिये, कि हम क्या कर रहे थे।" इन्हीं सब बातों पर तर्क-वितर्क चल रहे थे, इसी समय रायबहादुर रामसदय एक लिखा हुआ काग़ज़का टुकड़ा लिये हुए हमारे घरके अन्दर आये और बड़े उत्साहसे बोले,—"यह देखो, भाई! हेमचन्द्रका statement (बयान)

है । उसने सब बातें स्वीकार करली हैं ।" कहना व्यर्थ है, कि यह कोरी गप्प थी । जिस statement को उन्होंने हेमचन्द्रका बयान बतलाया था, वह बिल्कुल उनकी मनगढ़न्त बात थी । पर हमारी बुद्धि उस समय ऐसी बिगड़ गयी थी, कि हम लोग यह न समझ सके, कि यह सब चालें हमारे ही मुंहसे अपराध स्वीकार करानेके लिये चली जा रही हैं । हम लोगोंने दो एक मामलेमें अपनी जिम्मेदारी कुबूल कर उस रातके लिये छुट्टी पायी ।

दूसरे दिन दोपहरको जब हम लोग लालबाज़ारके पुलिस-कोर्टमें हाज़िर किये गये, तब धर पकड़ बहुत कुछ कम हो गयी थी । लड़कोंके मुंह सूखे हुए थे । एक लड़केने पास आकर कहा,—"भाई ! यहां तो खाये बिना मरा चाहता हूं । कल दिनभर पेटमें एक दाना भी न पड़ा । सिर्फ थोड़ीसी मूड़ी मिली थी ।" वारीन्द्र सुनकर अधीर हो उठा । पास ही इन्स्पेक्टर विनोद गुप्त खड़े थे, उनसे बोला,—"हमें फांसी देना हो तो भलेही दे दो : पर इन लड़कोंको भूखों क्यों मारते हो ?" विनोद गुप्तने तुरन्त ही 'यह लाओ, वह लाओ' कहते हुए एक सबइन्स्पेक्टर पर हुकम जारी किया ; पर वह भी एक हेडकान्स्टेब्लको हुक्म देकर चुप रह गया । इधर हेडकान्स्टेब्ल एक अभागे कान्स्टेब्लके सुपुर्द वह काम करके

वहांसे लम्बा हो गया। बार-बार कहते-सुनते सिर्फ एक-एक गिलास पानी पीनेको मिला। जब यह बात बिनोद गुप्तसे कही गयी, तब वे एक काल्पनिक कान्स्टेबल पर आंखें लाल किये गालियोंकी वर्षा करते हुए न जाने कहां गायब हो गये, फिर उनका पता न लगा।

पुलिसकोर्टकी लीला समाप्त हो जानेपर हमलोग गाड़ीमें भर भरकर अलीपुरके मैजिस्ट्रेटके इजलासमें हाजिर किये गये। मैं न्याय और धर्मके नामपर यह बात स्वीकार करनेको लाचार हूं, कि रास्तेमें पुलिसवालोंने हमें दो दो पूरियां और एक सिंघाड़ा खानेको दिया था। यही नहीं मैजिस्ट्रेटके सामने इजहार देते समय गला न सूखने पाये, इसके लिये किसी किसीको एक एक गिलास पानी भी पिलाया था। पर हां, ऐसा उन्होंने मैजिस्ट्रेट साहबके फटकारने पर ही किया था।

खैर कचहरीमें आकर हमने देखा, कि मैजिस्ट्रेट बर्ले (Birley) साहब बिकट चेहरा बनाये ऊंचे आसन पर बैठे हैं। मुंह ठीक सफेद संगमरमर का बना मालूम होता था। उन्हें देखनेसे ऐसा जान पड़ता था, मानों वे शासन यन्त्रकी साक्षात् मूर्त्ति हैं। उन्होंने हमारा इजहार लिख चुकनेके बाद पूछा,—"तुम लोग क्या समझते हो, कि भारतवर्षका शासन स्वयं कर सकोगे?"

यह बात सुन कर उन दुःखके दिनोंमें भी हंसी आगयी। मैंने पूछा,—"साहब ! आजसे डेढ़सौ वर्ष पहले, क्या तुम्हीं-लोग हिन्दुस्थानका राज्य चलाते थे ? अथवा तुम्हारे देशसे भाड़े पर शासनकर्त्ता बुलाये जाते थे।"

यह जवाब शायद उन्हें अच्छा न लगा। उन्होंने अखबारोंके रिपोर्टरोंको हमलोगोंके साथ उनके जो सवाल-जवाब हुए, उन्हें प्रकाशित करनेकी मनाही कर दी।

कोर्ट से गाड़ीमें बन्द करके जब हमलोग अलीपुर जेलमें दरवाजे पर लाये गये, तब सांझ हो गयी थी। जेल बन्द हो चुकी थी, खाना-पीना भी प्रायः खतम हो चुका था, पर जेलर बाबूने न जाने कहांसे हमलोगोंको एक एक मुट्ठी भात और थोड़ी दाल खानेको दिलवायी। लगभग दो दिनके उपवासके बाद यह इतनासा भात ही अमृतसा मालूम हुआ।



पांचवां परिच्छेद ।


जिस रातको हम लोग जेल पहुंचाये गये, उस रातको हमारी अवस्था ऐसी खराब थी, कि हम कुछ भी भला-बुरा सोच नहीं सकते थे। पकड़े जातेही वारीन्द्रने कहा था,—'My mission is over (मेरा काम तमाम हो गया!) परन्तु मैं उस बातकी प्रतिध्वनि लाख बार खोजने पर भी अपने हृदयमें न पा सका। देशके सब कामतो बाकीही रह गये—केवल हमाराही काम तमाम हो गया! प्राणोंके परदे-परदेमें सहस्रों आकांक्षाएं और अनेक विचित्र कल्पनाएं लिये हुए हमलोग नया युग लाने चले थे— पर एकही भूमिकम्पके धक्के से सब कुछ मट्टीमें मिल गया! तो क्या इस जगत्‌में केवल पुलिसकी लाल पगड़ी ही सत्य है, और सब मिथ्या है! अतीतकी कितनी ही स्मृतियां सिरमें चक्कर लाने लगीं। याद आयी माँकी भी एक बात। मैं तीन चार महीने देशके भिन्न भिन्न भागोंका चक्कर लगाकर दुबला-पतला और हारा-थका शरीर लेकर एक दिन अपने घर गया था। उस समय मेरी माँने मेरा मुंह देखकर अभिमानके साथ कहा था,—"मेरे बेटे! अब क्या तुझे माँके

हाथकी रसोई नहीं सुहाती ? बेटा, कहां दीन दुखियोंकी तरह गली गली भटकता फिरता है ? बड़े आदमीका बेटा हो कर क्या अन्तमें किन्हीं पुलिसवालोंके हाथ बेइज्जत होगा ?"—आज सचमुच पुलिसने मुझे पकड़कर बेइज्जत किया ! साथ ही साथ उस कान्स्टेबलकी भी एक बात याद आयी। उसने हमें यहां लाते समय रास्तेमें कहा था,—"बाबू ! अगर तुम लोग उसी समय कुछ गोला गोली छोड़ते, तो हम सब लोग भाग जाते।" मैंने सोचा,—"ठीक कहा था उसने। एकदम भेड़ बकरीकी तरह हम लोग चुपचाप गिरिफ्तार हो गये—यह दुःख तो मरने पर भी दूर न होगा।" एक पुलिस-सार्जेण्टने दिल्लगी करते हुए कहा था,—"ये सब ऐसे अक्लबन्द थे, कि बागीचेमें सोते समय रास्तेमें पहरा देनेके लिये इन्होंने एक आदमी भी नहीं रख छोड़ा था।" यह बात भी सारी रात दिमागमें घूमती रही, पर इस समय सिवा हाथ मलमल कर पछतानेके और कोई चारा न था। एक बार उल्लास पर क्रोध हुआ। पुलिसवाले जब बागीचेके अन्दर घुस रहे थे, तब वह जग पड़ा था—यदि चाहता, तो भाग भी जाता, परन्तु वह तो निर्विकार साक्षी-स्वरूप ब्रह्म-पुरुष की भांति चुपचाप बैठा तमाशा देखता रहा—भागनेकी बात भी उसकी खोपड़ीमें नहीं आयी।

वह रात इसी दुश्चिन्तामें कट गयी। सबेरे उठकर कोठरी

से (cell) बाहर झाँक कर देखा, कि नरक एकदम गुलजार हो रहा है—हमारे सब अड्डोंके लड़के पकड़ लिये गये हैं। दो-चार अपरिचित लड़के भी दिखाई दिये। न जाने ये बेचारे कहाँसे टपक पड़े! मैंने एकसे पूछा,—"भाई तुम कौन हो?"

लड़का रोता हुआ बोला,—"मेरा मकान मानिकतल्ले में है। मैं आप लोगोंके बागीचेके पास ही सबेरेकी हवाखोरी कर रहा था, इस लिये साले मुझे पकड़ लाये। सबेरे उठकर हवाखोरी करना, इतना बड़ा पाप है, यह मुझे पहले मालूम नहीं था।"

मैंने और भी देखा, कि नगेनसेन गुप्त और उसका भाई धरणी, दोनों पकड़कर जेलमें ठूंस दिये गये हैं। ये बेचारे 'बम' का 'ब' अक्षर भी नहीं जानते थे। पुलिसवालोंको बमके अड्डेका पता लग गया है, यही सोच कर उल्लासकर बमके गोलोंका एक पिटारा, और कहीं जगह न मिलनेपर, अपने बाल्य-बन्धु नगेनके घर रख आया था। इस पिटारेके अन्दर मेंढ़क हैं या साँप, यह भी नगेन या धरणीको मालूम नहीं था। उनको बचाने ही के लिये उल्लासकरने पुलिसवालोंसे सब बातें कह दी थीं। उल्लासकर समझता था, कि सच्ची बात कहनेसे पुलिसवाले नगेन या धरणीपर मामला न चलायेंगे। पुलिसवाले ठीक धर्म-पुत्र युधिष्ठिरके खानदानके नहीं हैं, यह बात उस समय तक हमारे दिमागमें अच्छी तरह नहीं घुसी थी।

पुलिस क्रमशः भिन्न भिन्न जिलोंके बहुतसे लड़कोंको पकड़ लायी। सिलहटसे सुशील सेन और उसके दोनों भाई, धीरेन और हेमचन्द्र लाये गये। सुशीलको तो हम लोग पहलेसे जानते थे, पर उसके भाइयोंको हमने कभी देखा भी न था। मालदहसे कृष्णजीवन, यशोहरसे वीरेन घोष और खुलनेसे सुधीर भी आपहुंचे।

साथ साथ मेरे पुराने मित्र पण्डित हृषीकेश भी आये। ये मेरे एफ़ कालेजके सहपाठी थे। कालेजसे नाता तोड़कर, माता अङ्गरेजी-सरस्वतीका वायकाट कर, मैं जब साधु होने चला था, तब पण्डित हृषीकेशने भावकी तरङ्गमें आकर नीमतल्ला घाटमें गङ्गाजल हाथमें ले, प्रतिज्ञा की थी, कि मैं सभी अच्छे कामोंमें तुम्हारा साथ दूंगा। एक तो नीमतल्लाघाट ही महातीर्थ ठहरा, दूसरे माता गङ्गा एकदम जागती देवी ठहरीं—फिर वहांपर की हुई प्रतिज्ञा भला व्यर्थ क्यों चली जाती? न मालूम कैसी बुरी सायतमें माता गङ्गाने उनकी प्रतिज्ञा सुनकर मन ही मन 'तथास्तु' कह दिया था! सचमुच उसी दिनसे पण्डितजी मेरे पीछे लगे फिरे। शास्त्रोंमें लिखा है, कि उत्सवमें, व्यसनमें, दुर्भिक्षमें, राष्ट्र विप्लवमें, राजद्वारमें और श्मशानमें भी जो अपने साथ कन्धेसे कन्धा मिलाये रहे, वही मित्र है। हृषीकेशके विवाह और उस लड़केके अन्नप्राशनकी पूरी मिठाई खाचुका हूं, अकाल

पड़नेपर दोनोंने एक साथ मिलकर दुर्भिक्षपीड़ितोंकी सेवा की है, दोनों एक साथ साधु भी हुए, सङ्ग ही सङ्ग मास्टरी भी करते रहे और आज राष्ट्र-विप्लवके मामलेमें एक ही साथ पुलिससे पकड़े भी गये! भविष्यत्में हम दोनोंको एक ही साथ पुण्य-धाम अण्डमान-द्वीपमें भी रहना पड़ेगा, यह बात मुझे उस समय नहीं मालूम थी। मित्रताके सभी लक्षण तो मिल गये हैं, बाकी रहा है, श्मशान! नीमतल्लेमें की हुई प्रतिज्ञाका अन्तिम उद्यापन भी नीमतल्लेमें ही * हो जाये, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊं।

खैर, जाने दो, भविष्यत्की बातका हाल कौन जाने? जेल-में पहुंचकर हम दो ही दिन विश्राम करने पाये थे, कि पण्डित हृषीकेशकी लम्बीचौड़ी लाश वहां आ पहुंची। उस बेचारेका मानिकतल्लावाले बागसे कोई सरोकार न था। हां, वह हम लोगोंका हाल कुछ कुछ जानता भर था। उसके विरुद्ध कोई विशेष प्रमाण भी न था। बागीचेमें मिले हुए कुछ कागज-पत्रोंमें उसका लिखा नाम देखकर ही पुलिस उसे सन्देहमें पकड़ लायी थी। पर चाहे जो हो, गङ्गाजल हाथमें लेकर की हुई

* कलकत्तेमें नीमतल्लाघाट पर ही हिन्दुओंके मुर्दे जलाये जाते हैं—उसीकी ओर इशारा है। अनुवादक।

प्रतिज्ञा भला कैसे विफल होती ? उसे तो कालेपानीकी सैर करनी ही पड़ेगी। जिस समय पुलिसवाले उसे मजिट्रेटके सामने लेकर पहुंचे, उस समय साहबको उसका ब्राह्मण-पण्डितोंका सा भोलाभाला चेहरा देखकर ऐसा जान पड़ा, कि वह निरपराध है, पर साहबका चेहरा देखते ही मेरे मित्रका मिजाज बिगड़ उठा। महामान्य सरकार बहादुरके राज्य और शासन-नीतिके सम्बन्धमें मेरे मित्रने मैजिस्ट्रेटके सामने जो सब खरी-खोटी कह सुनायी थी, उसे यहाँ लिखकर इस बुढ़ापेमें विपद् मोल लेनेकी मेरी इच्छा नहीं है। पूरब-बङ्गालके छोटे लाट फुलर साहबकी टाम-फुलरी (Tom-foolry) की आलोचना-से लेकर लार्ड मार्लेके पृतृ-श्राद्धकी व्यवस्था तक सभी बातें उसने कह डाली थीं। पण्डितजी की यह लम्बी चौड़ी वक्तृता सुन, मजिस्ट्रेटने उनको जेलके भीतर एक एकान्त कोठरीमें कैद करके अपना राजनीतिक विचार बदलनेकी आज्ञा दी।

एक सप्ताहके भीतर ही श्रीमान् देवव्रत आ पहुंचे। प्रायः सालभरसे वे 'युगान्तर' से नाता तोड़कर 'नवशक्ति' का सम्पादन कर रहे थे। उस पत्रके बन्द हो जानेपर वे अपने साधन भजनमें मगन रहकर घर ही रहते थे। बाहरी आदमियोंसे बहुत मिलते-जुलते भी न थे। उड़ते हुए पर्वतकी तरह वे भी एक दिन सुन्दर प्रभातकालमें जेलमें आ धमके।

पुलिस कोर्टमें हम लोगोंने सुना था, कि जिस दिन हम लोग पकड़े गये थे, उसी दिन अरविन्द बाबू भी गिरफ्तार किये गये थे, पर हम लोगोंको जेलमें जहां जगह मिली थी, वहां हम लोगोंने उन्हें नहीं देखा। सुना, कि वे अलग रखे गये हैं।

हृषीकेशको जिस दिन पुलिस पकड लाई थी, उसीके एक दिन पहले श्रीरामपुरके गोस्वामियोंके घरपर पुलिसका धावा हुआ और वह नरेन्द्रको पकड लायी। वह हमीं लोगोंके साथ एक ही जगह कैद था।

हमारे बागीचेमें एक नोटबुक थी, जिसमें 'चारुचन्द्र राय-चौधरी' यह नाम लिखा हुआ था। खुलनेके इन्दुभूषणको ही हमलोग 'चारु' कहते थे। पुलिसको यह क्या मालूम था? अतएव वह 'चारुचन्द्र राय चौधरीको' तलाशमें लगी। अन्तमें उसने यही निश्चय किया, कि चन्दननगरके डूप्ले-कालेजके अध्यापक श्रीयुत चारुचन्द्र राय ही यह चारुचन्द्रराय चौधरी हैं। शायद बेचारे चारु बाबूका यही इतना बड़ा अपराध था, कि मैं और कन्हाईलाल दत्त, दोनोंही उनके विद्यार्थी थे और दोनोंहो का मकान भी चन्दननगर ही था। जिनके छात्र ऐसे राजद्रोही हों, वे चाहें 'राय' हों या 'राय चौधरी' उससे क्या बनता-बिगड़ता है? उन्हें ज़रूर पकड़ना ही होगा!

खैर, थोड़े ही दिनोंमें एक-एक करके पुलिसने ३०।३५ आदमियोंको हाजतमें ठूंस दिया। तीन-चार कोठरियोंमें तो तीन-तीन आदमी एक साथ रहे और शेष सब अलग-अलग कोठरियों में।

धर पकड़का ज़ोर कम होते होते एक सप्ताह बीत गया। ज़रा होशमें आने पर मैंने देखा, कि एक सात हाथ लम्बी और ५ हाथ चौड़ी कोठरीमें हम तीन प्राणी कैद हैं। मेरे सिवा और जो दो कैदी थे, वे लड़के थे। एककी उमर २० और दूसरेकी १५ बरसकी थी। पहलेका नाम था, नलिनीकान्त गुप्त। वह प्रेसिडेन्सी कालेजकी चतुर्थ वार्षिक श्रेणीमें पढ़ता और बड़ाही सात्विक प्रकृतिका लड़का था। दूसरेका नाम था, सचीन्द्रनाथ सेन। वह नेशनल कालेजका भगोड़ा लड़का था—उसे एकदम शिशु या बच्चा कहें, तो कह सकते हैं। उसी कोठरीके एक कोनेमें पाखाने, पेशाबके लिये दो गमले रखे हुए थे। तीनोंको उन्हींसे काम लेना पड़ता था। इसलिये एकको हाजत होने पर शेष दोनोंको आँखें बन्द कर लेनेके सिवा और कोई उपाय नहीं था। कोठरीके सामने ही एक छोटासा बरामदा था, वहीं पर हाथ-मुंह धोने या स्नान-भोजन करनेकी व्यवस्था थी। उस बरामदेके सामने लम्बासा आँगन था और उसके बादही खूब ऊंची चहारदिवारी थी। वह चहारदीवारी देखकर हमारी

आँखोंमें शूलसा विंध जाता था। वह मानों हमसे चिल्ला-चिल्ला कर कह रही थी,—"तुम लोग कैदी हो, कैदी! अब जब हमारे अन्दर आ गये हो, तब तुम्हारा छुटकारा नहीं है!"

चहारदिवारीके ऊपर आकाश और एक पीपलके पेड़का सिरा दिखाई देता था। बस जेलखानेमें कविताका अंश इतना ही था—बाकी सब गद्यही गद्य था। पहले दिन उसे देखकर हंसी आयी, दूसरे दिन क्रोध हुआ, तीसरे दिन रोना आया। सवेरे सोकर उठते ही एक लम्बे चौड़े डीलडौल वाला काला जवान बालटीमें न जाने कौनसी सफेद-सफेद चीज़ लिये आया और हमारे लोहेके 'थालों' में ढाल गया। मैंने सुना, कि यही हमारा 'बाल-भोग' है—इसे अलीपुर-जेलकी भाषामें 'लपसी' कहते हैं! 'लपसी' किस चिड़ियाका नाम है, रे बाबा! शचीनने दूरही से देखकर कहा,—"अरे यार! यह तो मांड मिला भात है!" दूसरे दिन देखा, कि दालके संग मिल कर लपसीका रङ्ग पीला हो गया है! तीसरे दिन देखा, कि उसका रङ्ग लाल है! सुना, कि उसमें आज गुड़ दिया गया है—गोया हमारे जलपान-का यह राजकीय संस्करण है! साढ़े दस बजे एक टीनके कटोरेमें रंगूनी चाँवलोंका भात, अरहरकी दाल, कुछ साग-पात और इमलीकी चटनी आयीं। सन्ध्याको भी यही सब चीजें खानेको मिलीं—हाँ इमलीकी चटनी नहीं आयी!

डाक्टर और जेलर साहबके मुलाहिज़ा करने आते ही हम लोगोंने एक बड़ा भारी पेट-सम्बन्धी आन्दोलन आरम्भ किया। डाक्टर जातिके आयरिश थे—बड़े ही भलेमानुस थे। हम लोगोंकी सब बातें चुप चाप सुन लेनेके बाद उन्होंने कहा,—"कोई चारा नहीं है। जेलके कैदियोंको बंधे हुए हिसाबसे ही खानेको दिया जाता है। हाँ यदि कोई बीमार पड़ जाये, तो उसके लिये अस्पतालसे इन्तज़ाम कर दिया जाता है; परन्तु अच्छी भली हालतमें तो दूसरी तरहका खाना देनेका हमें अधिकार नहीं है।" जेलर साहबने कहा,—"जेलके बागीचेमें आलू, बैंगन, कुम्हड़ा, प्याज सभी कुछ तो पैदा होता है, यहांका खाना कुछ खराब थोड़े ही है?" शचीन बड़ा ही हाज़िरजवाब लड़का था। उसने तुरन्त ही कहा,—"पैदा तो सब कुछ होता है, लेकिन मालूम होता है, कि पोईकी डंटी और केलेकी थलीको छोड़ कर और सब चीजें शायद रास्ता भूलकर दूसरी जगह चली जाती हैं!"

हमने देखा, कि सिवा बीमार पड़नेके और कोई उपाय नहीं है। बस हम सब बारी-बारीसे बीमार पड़ने लगे। पर रोज नयी नयी बीमारी कहांसे ढूंढ़ लायें! पेटका दर्द, सिरका दर्द, हौलदिल, मितली आदि सब बीमारियां एक एक करके होचुकीं, तब हमलोग ऐसी बीमारीकी खोजमें लगे, जो कि जाहिर न

मालूम पड़े। बीमारी तो एक न एक चाहिये ही; क्यों कि इसके बिना जान ही बचनी कठिन थी। डाकृर साहबके आने पर पं० हृषीकेशने गम्भीर होकर कहा,—"मेरी बायीं आंखकी ऊपरवाली पलक तीन दिनोंसे बराबर फड़क रही है, इसलिये मैं बहुत बेचैन हो रहा हूं। उन्होंने यह कहकर अच्छी तरह डाकृरको जंचाना चाहा, कि मैं बहुत बीमार हूं, इसमें सन्देह नहीं। उनको यही विश्वास था, कि सिवा अस्पतालके भोजनके जान बचानेका और कोई उपाय नहीं है। बेचारे डाकृर मुस्कराकर रह गये और उन्होंने उनके लिये अस्पतालसे खाना मंगवानेका प्रबन्ध कर दिया।

एकाएक हमलोगोंने एक और तरकीब निकाली। हमने सोचा, कि पैसा खर्च करनेसे जेलखानेमें ही सब कुछ बैठे बैठे मिल जाता है। जेलके पहरेदारों और रसोइयोंको थोड़ी बहुत दक्षिणा दे देनेसे ही भातके भीतरसे तली हुई मछलीके टुकड़े और रोटीके अन्दरसे आलू और प्याजका साग निकल आता है। यही नहीं, पहरेदारोंकी पगड़ीके अन्दरसे पान और सिगरेट भी निकलते देखे जाते हैं!

एक बड़ी भारी असुविधा यही थी, कि एक कोठरीका आदमी दूसरी कोठरीवालेसे बातें नहीं कर सकता था। पहले तो लुक-छिपकर एकाध बातें हो जाती थीं; पर इसपर पहरे-

वाले घोर आपत्ति करने लगे। उन्होंने जेलरसे शिकायत करनेका भय दिखाया। अकस्मात् एकदिन देखा, कि वे बड़े ही शान्त-शिष्ट हो गये हैं। हमलोग जोर जोरसे बातें करें, तो भी नहीं सुनते। खोज-ढूंढ़ करने पर मालूम हुआ, कि हमारे एक बन्धुने चांदीके टुकड़े देकर उनके कानोंके छिद्र बन्द कर दिये हैं। जेलर या सुपरिण्टेण्डेण्टके आनेका समय होते ही वे खुद हमलोगोंको सावधान कर देने लगे। इन चांदीके टुकड़ोंकी ऐसी अपार महिमा है, यह बात हम अबतक कानों ही सुनते आये, आज उसका प्रत्यक्ष प्रमाण देख हमारे जन्म सफल हो गये। पर एक आफत टलते न टलते दूसरी आ मौजूद हुई।

हमारे जेलमें पहुंचते ही सी० आई० डी० वाले भी यहां आने-जाने लगे थे। उनकी बातें सुनकर ऐसा मालूम होता, मानों हमारी वीरता देखकर उनकी छाती दस हाथ ऊंची हो गयी है, हमारी सहानुभूतिसे मानों उनके प्राण छटपटा रहे हैं! उनकी बातें ऐसी चिकनी-चुपड़ी, हाव-भाव ऐसा मनभावन था, कि देखते सुनते ऐसा मालूम होता, मानों वे किसी जन्ममें हमारे परम आत्मीय थे। पर खैरियत इतनी ही थी, कि पकड़े जानेवाले दिन रात भर उनके घरमें रहकर हमलोगोंने उनके छल-बलका हाल बहुत कुछ जान लिया था। इन देवता-

ओंको यहां आते-जाते एक ही सप्ताह हुआ होगा, कि हमने देखा, कि एकाएक नरेन्द्र गोस्वामी बड़ा जिज्ञासु हो गया है। बंगालके सिवा और भी कहीं विद्रोहियोंका केन्द्र है या नहीं, यदि है, तो उसके नेताका नाम क्या है, इत्यादि तरह-तरहके प्रश्न वह हमलोगोंसे करने लगा। जेलवालोंकी बातचीतसे हमलागोंने ताड़ लिया, कि कहीं कुछ गोलमाल जरूर हुआ है।

हृषीकेशने एक दिन आकर मुझसे कहा,—"भाई! क्या तुम दो-तीन मद्रासियों और मराठोंके नाम, जो सुननेमें जरा भड़कदार हों, बता दे सकते हो?"

मैंने पूछा,—"किस लिये?"

हृषीकेशने कहा,—"मालूम होता है, कि नरेन पुलिसवालोंका भेदिया बन गया है। दो-चार उलटे-पुलटे नाम बता दो, तो ये साले देशभरमें उन्हें ढूंढ़ते हुए भटका करें।"

वही हुआ। महाराष्ट्रीय केन्द्रके सभापति का नाम रखा गया—श्रीमान् पुरुषोत्तम नटेकर। गुजरातके हुए किशनजी भाऊजी या इसी तरहका कोई आदमी। पर मद्रासका भार कौन ले! मद्रासी नाम बनाना जरा टेढ़ी खीर थी! उस समय अखबारोंमें हमने चिदम्बरम् पिल्लेका नाम पढ़ा था। हृषी-

केशने कहा,—"जब 'चिदम्बरम्' मदरासी नाम हो सकता है, तब विश्वम्भरम् क्यों न होगा, और 'पिल्ले'* की जगह 'यक्कत्' या ऐसा ही कुछ रख देनेसे काम चल जायेगा।"



*"पिल्ले" बंगलामें 'तिल्लीको' कहते हैं।

छठा परिच्छेद।



रह-तरहकी बातें कल्पनाएं उठ रही थीं। नाना प्रकारकी बातें उड़ रही थीं, इसी समय एकाएक हमारे भाग्य खुल गये। जेलके हाकिमोंने हुकम दिया, कि ४४ डिग्रीसे दूसरे स्थानमें लेजाकर हमें इकट्ठा रखा जावेगा। भाग्य-विधाता एकाएक यों कैसे प्रसन्न हो उठे, यह तो वेही जानें, पर हम लोग हँसते-हँसते लोटपोट होगये। गले लगने छातीसे लगने, कूदने-फाँदने और चिल्लानेका जोर कम होते-होते एक घण्टा बीत गया। इसके बाद जरा होश ठिकाने होनेपर देखा, कि हम लोग तीन कोठरियोंमें, जो पास ही पास हैं, रखे गये हैं। दो कोठरियां, जो अग़ल-बग़ल थीं, वे तो छोटी थीं; पर बीच वाली बड़ी थी। अरविन्द बाबू और देवव्रत केसे गम्भीर-प्रकृति वाले तो अग़ल-बगलवाली कोठरियोंमें रहे और हमारे जैसे 'धकंटानन्द' बीचवाली बड़ी कोठरी दखलकर बैठे तथा सारा दिन मौजसे बितानेकी तैयारी करने लगे। मेदिनीपुरके श्रीयुत हेमचन्द्रदास भी हमारे ही साथ थे। हेमचन्द्रसे जान-पहचान

होनेका पहले कभी अवसर नहीं मिला था ; इसबार उसको अपने पास पहुंचा देख देखा, कि जिनके सिरके बाल पक जाते हैं, बुद्धि भी परिपक्क हो जाती है, पर उमर बड़ी नहीं होती, हेमचन्द्र उन्हींमेंसे एक हैं। असाधारण शक्ति-सम्पन्नताके साथ साथ बाल-सुलभ चञ्चलता मिला देने पर जिस अद्भुत चरित्र-की सृष्टि होती है, हेमचन्द्रका चरित्रको वैसा ही था। दो-ही-तीन दिनोंमें वे सबकी सलाहसे सबके "हेम भैया" बना दिये गये। अगल बगलवाली कोठरियोंमें तो लिखना-पढ़ना और धर्मालोचना चलने लगी तथा हमारी कोठरीमें नाचना, गाना, हँसी-दिल्लगी, हाथापाई और परस्पर चुटकी भरनेका तमाशा जारी हो गया। कहना व्यर्थ है, कि उल्लासकर हमी-लोगोंके साथ था। फिर तो उस हँसी-मजाकमें हमें इस बातका कोई खयाल ही न रहा, कि हम लोगोंका घर द्वार छूट गया है और हम कैदखानेमें हैं !

कुछ ही दिन बाद हमारे आनन्दकी मात्रा और भी बढ़ गयी। बाहरसे पुलिस और भी कितने ही आदमियोंको पकड़ लायी। हम लोग सब मिलाकर ४०।४५ आदमी थे। इतने आदमियोंको तीन कोठरियोंमें बन्द, रखनेसे तो इतिहास प्रसिद्ध काल-कोठरीकी हत्याका पुनराभिनय हो जायेगा। डाक्टर साहब-ने कहा, कि एक 'वार्ड' खाली करके हम सबोंको वहीं रखा

जायगा । इसी लिये हम सब इकट्ठे हो गये—नरक एकदम गुलज़ार हो उठा ।

जेलके खानेकी बार-बार शिकायत करनेपर डाक्टरने हम लोगोंके लिये बाहरसे फल, मूल और मिठाई पानेकी व्यवस्था कर दी थी । सुशील सेनके पिता अकसर आम, कटहल और मिठाई भेजा करते थे । कलकत्तेकी अनुशीलन समितिके लड़के भी बीच बीचमें घी, चांवल, मसाले और मांस भेज दिया करते थे । हरफन मौला हेम भैया उन सब चीज़ोंको अस्पतालमें ले जाते और पुलाव बनवाकर हमारे दिव्य भोजन की व्यवस्था कर देते थे । आम और कटहल तो इतने अधिक पहुंचने लगे, कि उन्हें खाकर खत्म करना मुश्किल हो जाता । इस लिये उन्हें एक दूसरेके मुंह और सिरमें तेलकी तरह रगड़-रगड़ मलकर उनका सद्व्यवहार करनेके सिवा और कोई उपाय नहीं था ।

सांझ होते ही गानेकी बैठक जमती । हेमचन्द्र, उल्लासकर और देवव्रत आदि कई जने अच्छा गाना जानते थे । पर देवव्रत ज़रा गम्भीर-प्रकृतिका आदमी था, इसलिये बहुत नहीं गाता था । बहुत दिक करने पर उसने एक दिन हम लोगोंको अपना बनाया हुआ गाना सुनाया था । वह गाना किसी भारतव्यापी विप्लवको ही लक्ष्य करके बनाया गया था । उसके स्वरमें ऐसी कुछ मोहिनी शक्ति थी, कि गाना सुनते-सुनते हमारी आंखोंके सामने

विप्लवका चित्र स्पष्ट दिखाई देने लगता। कविता या गाना मुझे कभी याद नहीं रहता ; पर देवव्रतके उस गीतकी कुछ पंक्तियां मुझे अब तक याद हैः—

"माता ठाढी पुकारत हैं !
कोटि-कोटि सुत मातु-वचन सुनि,
देखो हुंकारत हैं ॥
सूरजका भी लाल रंग है,
लाल चन्द्रमा-तारा।
लाल-लाल डाली सजि लाये,
अञ्जलि लाल संवारत हैं ॥
वीर रक्तसे प्लावित होकर,
लाल भूमि यह सोहत है।"

गाना सुनते-सुनते मानस नेत्रोंके सम्मुख स्पष्ट ही दिखाई देने लगता है, कि आ समुद्र हिमाचल-व्यापी भावोन्मत्त जन-समूहपर और अभय देने वाली माताके हाथके स्पर्शसे और उनके वाहन, सिंहके गर्जनसे जग पड़ा है। ज़मीनसे लेकर आसमान तक घनघोर मारू बाजोंसे गूंज उठा है ! हम लोगोंके जीमें ऐसा आया, मानों हम सब बन्धनोंसे छुटकारा पा गये हैं—दीनता, भय और मृत्यु मानों हमें कभी छू भी नहीं सकती।

लड़के सदा सामयिक स्वदेशी-सङ्गीत गाया करते थे। उनकी उस न रुकने वाली उमङ्ग और उत्साहको दबा रखना मुश्किल हो गया ! इन सबका अगुआ शचीन सेन था। १५ बरसकी उमरमें ही वह माँ-बापकी बात न मानकर हठ करके कलकत्ते के नेशनल कालेजमें पढ़ने चला आया था। पर उसके प्राणोंकी गहरी आकांक्षा कालेजकी पढ़ाईसे न मिटी—वह अन्तमें घरसे भाग कर हमारे बगीचेमें आ डटा। जेलमें आनेके बादसे चिल्ला चिल्ला कर, तड़प-कूदकर, गीत गा-गाकर, लपक कर कन्धे पर चढ़कर, आम कटहल चुरा-चुराकर वह केवल हमीं लोगोंकी जाम नहीं घबड़ाये हुए था, बल्कि उसके मारे जेलके कर्म्मचारियोंका भी नाकमें दम हो रहा था। उसकी वक्तृताओं, गीतोंने सबको आजीज कर दिया। रातके बारह एक बजे तक उसका गाना बन्द नहीं होता था। जेलर बाबू बड़े ही भले-मानस थे। इतने भले आदमियोंके लड़कोंके जेलमें आनेसे वे बड़े ही दुखी थे। एक ओर नौकरीका खयाल था, क्योंकि पेन्शन पानेको सिर्फ बारह मास बाकी थे—दूसरी ओर आँखोंका शील था—इस दो तरफी आगमें बेचारेकी आबरू खराब हो रही थी ! एक तो भलेमानसने इस बुढ़ापेमें चौथी या पांचवीं शादी की है, तिसपर रातको लड़के गीत गा गाकर उनके प्राण खाये डालते हैं ! एक दिन सबेरे ही आकर उन्होंने बड़े भले-मानसकी तरह कहा,—"आप लोग छोटे छोटे लड़कोंको समझा

दें, कि रातको जरा शान्त रहा करें, क्योंकि रातको गृहणी और मच्छड़ोंके उपद्रवके साथ ही साथ लड़कोंके गानेको घूमधाम मिल जानेसे मेरी तो जान ऐसी घपलेमें पड़गयी है, कि सालभर जीना भी मुश्किल मालूम होता है—पेन्शन लेने तक बचना तो बड़ी दूरकी बात है।" अब इस सुन्दर युक्तिके बाद और क्या कहा जाय? कथा-माला और शिशु-शिक्षासे अनेक अच्छे अच्छे उपदेश चुनकर हमने लड़कोंको सुनाये और अपना कर्तव्य पालन किया। परन्तु यदि सदुपदेशके अनुसार कार्य करनेकी ही बुद्धि उनमें होती, तो फिर भारतका उद्धार करनेकी सनक क्यों उनके सिरपर सवार होती?

अरविन्द बाबू देवव्रत और वारीन्द्रके सिवा और सभी लोग इस चण्डाल चौकड़ीमें शामिल थे। हाँ, बीच बीचमें वे भी पकड़ लिये जाते थे। पकड़े जानेके बादसे ही वारीन्द्रको न जाने कैसी ठेस पहुंची थी, कि वह सारा दिन चादर तानकर लम्बा पड़ा रहता। देवव्रत सबेरे ही उठकर टाँगपर टाँग चढ़ा, अचल-प्रतिष्ठकी तरह बैठ जाता और दस बजेतक हिलने डोलने-का नाम न लेता। खानेके बाद भी चार पाँच बजे तक वह योंही चुपचाप बैठा रहता था। कभी गीता और कभी भागवतका पाठ करने लगता। उसका समय इसी तरह कट रहा था। अरविन्द बाबूको भी एक कोनेमें जगह मिली थी। सबेरे ही

उठकर वे वहीं अपने साधन-भजनमें लगे रहते। लड़के चिल्ला चिल्लाकर उन्हें तङ्ग करते थे, तो भी वे कुछ न बोलते थे। वे तीसरे पहर दो तीन घण्टे घूम घूमकर उपनिषद् या और किसी धर्मशास्त्रका पाठ करते थे। हाँ, सांझको हमारे लड़क-खेलमें एकाध घण्टा शामिल हुए बिना उन्हें भी छुट्टी नहीं मिलती थी।

कन्हाईलाल आदि चार पांच जने सोनेका काम सांझको ही निपटा लेते थे। रातके १०—११ बजे जब सब लोग सो रहते, तब वे उठकर कहां किसके सन्देश, आम या बिस्कुट रखे हैं, यही ढूंढ़ते फिरते थे। जिस दिन कुछ भी नहीं मिलता, उस दिन रस्सी लेकर किसीका हाथ किसीकी कमरमें बांध देते थे अथवा किसीका कान दूसरेके पैरके साथ बाँधकर हाथ मलते हुए सो जाते थे। एक दिन रातको एक बजे उठकर मैंने देखा, कि कन्हैलालदत्त किसीके बिछावनके नीचेसे एक बिस्कुटका डब्बा चुरा लाया है और बड़े आनन्दसे बगल बजा रहा है। अरविन्द बाबू पास ही सोये हुए थे। आनन्दकी इस शब्दव्यक्तिसे उनकी भी नींद टूट गयी। बस कन्हैलालने झटपट कई एक बिस्कुट लेकर उनके हाथपर रख दिये। बिस्कुट लेकर अरविन्द बाबूने चादरसे मुंह छिपा लिया! निद्रा भङ्ग होनेका कोई लक्षण न रह गया। चोरी भी नहीं पकड़ी गयी।

रविवारके दिन हमारी उमङ्ग कुछ और बढ़ जाती थी। बहुतसे आत्मीय-स्वजन और बाहरी आदमी उस दिन हमें देखने आते थे। इस लिये बहुत तरह तरहके संवाद भी हमें मिल जाते थे। खूब मिठाइयाँ भी खानेको मिलतीं। भरपेट हंसी-के भीतर थोड़ा बहुत करुण-रस भी झलकने लगता। शचीनके पिता एक दिन उससे मिलने आये थे। जेलमें कैसा खाना मिलता है, यह पूछनेपर उसने लपसीका नाम लिया। कहीं लपसीके रूप-गुणकी बात सुनकर वे दुःखी न हों, इसी लिये उसने खूब तारीफ़ की। बोला,—"लपसी बड़ी पुष्टिकर वस्तु है।" पिताकी आंखे डबडबा आयीं। जेलर बाबूकी ओर मुंह फेर कर बोले,—"घरपर मेरा बेटा पुलावका कटोरा फेंक दिया करता था और आज लपसीको पुष्टिकर पदार्थ बतला रहा है! हाय!" बेटेकी वह अवस्था देख, बापके मनमें कैसा दुःख होता है, यह बात उस समय तक अच्छी तरह समझमें नहीं आयी थी—हाँ, उसका धुंधला सा आभास हमें जरूर मिल गया। एक दिन मेरे आत्मीय-स्वजन मेरे लड़केको मुझसे मिलानेको ले आये। लड़केकी अवस्था उस समय केवल डेढ़ सालकी थी—बोल नहीं सकता था। शायद अब इस जन्नमें उसे फिर न देख सकूंगा यही सोचकर बड़ी इच्छा हुई, कि उसे गोदमें ले लूं; पर बीचमें लोहेके छड़ लगे होनेके कारण मेरी वह इच्छा जीकी जीमें ही रह गयी। उसी दिन मुझे कैदखानेकी असली

सूरत दिखाई दी। खैर, जानेदो, उन बातोंमें क्या रखा है ? इसी तरह हमारे दिन किसी तरह दुःख सुखसे कटने लगे। उधर मैजिट्रेटके इजलासमें विचार भी आरम्भ हो गया। रास्ते में आदमियोंकी भीड़का ठिकाना नहीं था—अदालतमें वकील बारिस्टरोंकी रेलपेल थी, पर हम लोगोंका उधर जरा भी ध्यान नहीं था। हमारी आँखोंमें सब कुछ एक तमाशासा मालूम पड़ता था। तरह तरहके गवाह हाजिर हो कर झूठ-सचकी खिचड़ी पका जाया करते थे, पर हम लोग केवल सुना करते और मन ही मन मुस्कराकर रहजाते। उनकी गवाही पर हमारा जीना मरना निर्भर है, यह बात कभी मनमें नहीं आती थी। स्कूलकी छुट्टी होजाने पर जिस प्रकार लड़के बड़ी खुशियां मनाते हुए घर लौटते हैं, हम लोग भी उसी तरह नाचते कूदते, गाते चिल्लाते हुए, अदालत उठनेके बाद गाड़ीपर सवार हो, जेलखानेमें चले आते थे। उसके बाद सन्ध्याके समय जब सभा बैठती, तब बर्ले साहब कैसी आधी अङ्गरेजी मिली हुई बङ्गलामें गवाहोंसे जिरह करते हैं, नार्टन साहबको पतलूनमें कहाँका कपड़ा फटा है और कहाँ पैबन्द लगा है, कोर्ट इन्स्पेक्टर साहबकी मूछें चूहे खागये हैं या दीमक—इन्हीं सब विषयोंकी गवेषणा उल्लासकर करने लगता था और हम लोग दिल खोलकर हंसा करते थे, पर इस हंसी-पर्वके बाद ही बड़ा भारी रुलाई-पर्व आनेवाला है, यह हम लोग उस समय तक नहीं जानते थे।

नरेन्द्र गोस्वामीकी बात मैं पहले लिख आया हूं। हम लोग जिस बातसे डरते थे, वही हुई। विचार आरम्भ होनेके दो चार दिन बाद वह सरकारी गवाह बनकर कठघरेमें जा खड़ा हुआ। उसीकी गवाहीके बलपर चारों ओर नयी नयी खाना-तलाशियां होने लगीं। फिर क्या था? पण्डित हृषीकेषके उर्वर मस्तिष्कसे उत्पन्न मरहठे और मदरासी नेताओंको ढूंढ़ निकालनेके लिये पुलिसवाले चक्कर काटने लगे।

जब नरेन सरकारी गवाह बन गया, तब हम लोगोंके पाससे हटाकर अस्पतालमें युरोपियन पहरेदारकी देख-रेखमें रखा गया। कहीं कोई उस पर हमला न करे, इस डरसे जेलके अधिकारी बड़ी सावधानी रखते थे। बेचारे जेलरने एक दिन कहा,—"देखिये, अब तो मैं लबे-बाम पहुंच चुका हूं, आगेका हाल राम जानें। कहते हैं, कि ताड़ पर चढ़ने वाला चढ़ता-चढ़ता ढाई हाथ चढ़नेको बाकी रह जाने पर अधमरा हो जाता है—उसकी जान निकलने लगती है। मैंने इतने दिन बड़े मजेसे नौकरी की, अब पेन्शनके समय आप लोगोंके चक्करमें आ फंसा हूं—अब तो खुशी बखुशी आप लोगोंको यहांसे विदा कर दूं तो समझूं, कि जान बची।" परन्तु कर्मका लिखा कौन मेट सकता है? ताड़के पेड़के बाकीके अढ़ाई हाथ चढ़नेकी नौबत ही उन्हें नहीं आयी।

मैजिस्ट्रेटने हम सबको दौरा सुपुर्द कर अपनी जान बचा ली—हमें भी खूब लम्बी छुट्टी मिल गयी। एकदमसे बैठे-ठालोंकी ही तो जमात थी—इसलिये सबके सब खूब हंसते खेलते, उछलते, कूदते और कभी मुकद्दमेके फलाफलके सम्बन्ध में परस्पर बहस-मुबाहीसे करते। लड़के किसीको फांसी दिलवाते, किसीको रिहा कर देते थे। एक दिन कन्हाईलालने कहा,—"रिहाईकी बात तो ताक पर रख दो. सबके सब बीस वर्षके लिये कालेपानी जाओ।" पर शचीन इस पर घोर आपत्ति करने लगा। उसने इस बातको साबित करना शुरू किया, कि बीस वर्षके अन्दर तो यह देश ज़रूर ही स्वतन्त्र हो जायेगा। कन्हाईलाल थोड़ी देर तक गम्भीर भावसे चुप रहनेके बाद बोला,—"देश स्वतन्त्र हो चाहे नहीं; पर मैं तो होजाऊंगा ? बीस वर्षकी कैद तो मुझसे न भोगी जायेगी।" इस बात चीतके दो-तीन दिन बाद एक दिन शामको वह एकाएक हाथसे पेट दबाये हुए सो रहा। बोला, कि मेरे पेटमें बड़े ज़ोरका दर्द है। तबसे वह अस्पतालमें ही रहने लगा। कुछ ही दिन पहले पुलिस मेदिनीपुरसे सत्येन्द्रको पकड़ लायी थी। वह कठिन खांसीसे पीड़ित था, इसी लिये अस्पतालमें ही रहता था।

कन्हाईलालके अस्पताल चले जानेके तीन ही चार दिन बाद एक दिन सवेरे ही उठकर हम लोग मुंह-हाथ धो रहे थे, इसी

समय अस्पतालकी ओरसे दो-एक बार बन्दूक छूटनेकी आवाज़ सुनाई दी। कुछ ही देर बाद हमने देखा, कि चारों ओरसे कैदियोंके पहरेदार अस्पतालकी ओर दौड़े चले जा रहे हैं। मामला क्या है? कोई बोला,—"बाहरसे अस्पताल पर गोला बरस रहा है।" कोई बोला,—"सिपाही सब गोली छोड़ रहे हैं" इतनेमें अस्पतालका एक कम्पाउण्डर दौड़ता-हांफता हुआ आया और जेलके आफिसके पास ही चक्कर सा खाकर गिर पड़ा। डरके मारे उसके चेहरेका रङ्ग उड़ गया था। वह जा संवाद देनेके लिये दौड़ा आया था, वह उसके पेटमें ही रह गया! प्रायः दस-पन्द्रह मिनट इसी उत्कण्ठामें बीत गये। इतनेमें एक पुराना चोर दौड़ा हुआ आया और बोला,—"नरेन गोसाईं तो ठंडा हो गया!" "ठंडा हो गया? इसके क्या मानी?" "जी हां, बाबू! कन्हाई बाबूने उसे वह पिस्तौल मारी, कि वह वहीं ठंडा हो गया! वह देखिये—वह कारखानेके सामने ही एक दम लम्बा होकर पड़ा हुआ है। जेलरबाबू भी तो सिधारा ही चाहते थे; पर वे कारखानेमें घुसकर एक बेंचके नीचे छिप गये, इसीसे बच गये।"

प्रायः पन्द्रह मिनट बादही जेलकी पगली घंटी (Alarm-Bell) बज उठी। चारों तरफसे जेलके पहरेदार दौड़े हुए अस्पतालकी ओर चले। कुछही क्षण बाद देखा, कि वे लोग कन्हाई और सत्येन्द्रको ४४ डिग्रीकी ओर पकड़े लिये आ रहे हैं।

सातवां परिच्छेद।





तरह-तरहकी अफ़वाहोंमें से तत्व निकाल निकालकर मैंने इस घटनाके विषयमें जो कुछ समझा-बूझा, वह यह है :—सत्येन्द्रने असपतालमें पड़े पड़े सोचा, कि जब कुछ ही दिनोंमें खांसीसे मरना ही है, तब नरेन्द्रको मारकर मर जाना ही अच्छा है। कन्हाईलाल, उसकी यह बात सुन, उसे मदद देनेके लिये पिस्तौल लिये हुए अस्पतालमें चला आया। पेटके दर्दका महज़ बहाना था। इसके बाद सत्येन्द्रने नरेन्द्रको कहला भेजा, कि भाई ! अब तो जेलके दुःख नहीं सहे जाते, मैं भी तुम्हारी ही तरह सरकारी गवाह बन जाना चाहता हूं ; इस लिये दोनों जने मिल कर सलाहकर लें कि पुलिससे क्या क्या कहा कहेंगे, जिसमें जिरहमें बिगड़ने न पायें। नरेन्द्र सत्येन्द्रके इस दम झाँसेमें आ गया। वह एक अँगरेज़ सिपाहीके साथ उससे मिलने आया। बातें करते करते जब सत्येन्द्रने उसपर पिस्तौल छोड़ी, तब वह उस घरसे भाग चला। भागते समय उसके पैरमें गोली लग गयी थी

पर वह कुछ सांघातिक नहीं थी। गोलीकी आवाज़ सुनते ही कन्हाईलाल दौड़ा हुआ अस्पतालके नीचेसे ऊपर जा पहुंचा। उस अंगरेज़ सिपाहीने उसे पकड़ लिया, पर कन्हाईलालने उसके हाथमें झट गोली मारी, जिससे वह वहीं गिर पड़ा और चिल्लाने लगा। उसी समय नरेन्द्र नीचे आकर अस्पतालके बाहर हो गया। कन्हाईलालने जब उस अंगरेज सिपाहीको जमीन पर सुला दिया, तब नरेन्द्रकी खोजमें चला; पर वह तो उस समय अस्पतालके बाहर हो गया था और एक सिपाही अस्पतालका दरवाज़ा बन्दकर वहीं डटा हुआ था। कन्हाई-लालने पिस्तौलसे उसकी छातीका निशाना साधकर कहा,—"अभी बतलाओ, कि नरेन्द्र किधर गया है, नहीं तो मैं गोली छोड़कर इसी दम तुम्हें ढेर किये देता हूं।" बेचारेने आहिस्तेसे दरवाज़ा खोल दिया और कहा, कि नरेन्द्र आफिसकी ओर गया है। कन्हाई दौड़ा हुआ नरेन्द्रकी खोजमें चला जा रहा था, कि इतनेमें दूरही से नरेन्द्रको देख, उसने दनादन गोलियां छोड़नी शुरू कीं। गोलीकी आवाज़ सुन जेलर, डिपटी जेलर, असिस्टेन्ट जेलर, हेड-जमादार, छोटा जमादार—सबके सब दल-बलके साथ अस्पतालकी ओर चले जा रहे थे। रास्तेमें खड़े कन्हाईलालको रुद्रमूर्त्ति देख, उन्होंने रणक्षेत्रमें पीठ दिखाना ही अच्छा समझा! कौन किधर भागा, इसका कुछ ठिकाना नहीं, पर यह बात तो सर्ववादिसम्मत है, कि जेलर

बाबू अपनी लम्बी चौड़ी देहका आधा हिस्सा कारखानेकी एक बेंचके नीचे छिपाये हुए थे। इधर कन्हाईकी गोली खाकर नरेन्द्र कारखानेके दरवाजेके पासही पछाड़ खाकर गिर पड़ा। जब कन्हाईकी पिस्तौल खाली हो गयी, तब बन्दूक, किर्च, लाठी, सोंटा लिये हुऐ सब आदमी बाहर निकले और कन्हाईको झट गिरफ़ार कर लिया!

अब यह सवाल पैदा हुआ, कि पिस्तौल आयी कहांसे? कैदियोंने खबर उड़ायी, कि बाहरसे हमारे लिये जो घीके टीन और कटहल आदि आते हैं, उन्हींमें किसीने पिस्तौल भर कर भेज दी है। कन्हाईलालने कहा, कि खूदीरामका भूत आकर मुझे पिस्तौल दे गया है। प्रेत-तत्व-विद् लोगोंकी लिखी हुई दो-एक किताबें मैंने पढ़ी हैं; पर भूतको पिस्तौल दे जाते कहीं नहीं पढ़ा! हमारे देशमें भूत किसी-किसी गृहस्थके घर पर ईंट पत्थर अलबत्ते फेंकते हैं—बहुत ज़ोर करें तो अरबीके पत्ते में लपेट कर कुछ खराब चीज़ें फेंक दिया करते हैं; इसलिये पिस्तौल और भूतकी यह कथा तो जी में न धंसी। कटहल और घीके टिन तो डाक्टर साहब खुद परीक्षा करके दिया करते थे, इस लिये उनके भीतर भी दो-दो पिस्तौलें भर कर आनेकी बात वैसी आसान नहीं मालूम हुई। पर हां जिस रास्ते अधि-कारियोंकी आँखोंमें धूल झोंक कर गांजा, भांग, अफीम, सिगरेट

आदि सभी कुछ सामान जेलमें पहुंच जाते हैं, उसी रास्तेसे पिस्तौलका पहुंच जाना भी कुछ विचित्र नहीं है !

खैर, गोली मारो इन बातोंको। इन बातोंको लेकर इस समय कौन मग्ज़ मारा करे! कुछ नतीजा थोड़े ही निकलना है? हां, तो नरेन्द्रकी मृत्युके साथ ही साथ हमारे भी भाग्य फूट गये। आधे घंटेके भीतर ही जेलके सुपरिण्टेण्डेण्ट शस्त्र-धारी सिपाहियोंके साथ बैरेकमें आ पहुंचे और एक-एक करके हम सबकी तलाशी ले-ले कर हमें बाहर निकालने लगे। इसके बाद बैरेकको खानातलाशी होने लगी। बिछावनके नीचे या इधर-उधर हमारे दस बीस रुपये पड़े हुए थे—वे सब खानात-लाशीके समय पहरे वालोंने साफ हज़म कर लिये। हम लोगोंके पास तो कुछ भी न मिला; परन्तु इन्सपेक्टर जेनरलसे लेकर छोटे-बड़े सभी पुलिस कर्म्मचारी जेलमें आ धमके। और भी कहीं पिस्तौल जेलमें छिपी है या नहीं, इस बातकी जांच होने लगी। कहीं दो एक पिस्तौल तालाबमें न फेंक दी गयी हों, इसका भी अनुसन्धान होने लगा। हमें बड़ी आशा थी, कि पिस्तौल ढूंढ़नेके लिये यदि तालाबका पानी उलीचा जायगा, तो दो-चार दिन मछली खानेका खूब सुभीता रहेगा; पर भाग्यमें यह नहीं बदा था। ऊपरसे इन्सपेक्टर जेनरलका यह हुक्म जारी हुआ, कि हम लोग फिर अलग-अलग कोठरियोंमें (cells) में बन्द

कर दिये जायें। बस, हम लोगोंको डिग्रीसे हटा कर वहीं ले जानेका बन्दोबस्त होने लगा।

सांझको जेलर बाबू हमें देखने आये। बेचारेका मुंह सूखकर सोंठ हो गया था। उन्होंने कहा,—"महाशयो! यदि आप लोगोंके मनमें यही था, तो जेलके बाहर ही क्यों न ऐसा कर डाला? देखता तो हूं, कि आप लोग एक दम मरने-मारनेको मुस्तैद हैं, फिर गिरफ़ार क्यों होने गये?" हम लोगोंने एक मुंहसे उनकी बातका प्रतिवाद करते हुए उन्हें यह समझानेकी चेष्टा की, कि इस कार्यसे हमारा रत्ती भर भी सरोकार नहीं है, पर उन्हें विश्वास न हुआ। वे हंस कर बोले,—"जी हां मैं सब समझ रहा हूं। जो हो, आप लोगोंका तो जो बदा है, वह होगाही, मेरा भी वारा-न्यारा हो गया!"

एक सप्ताहके भीतर ही सब कैदी ४४ डिग्रीसे हटाकर दूसरी दूसरी जेलोंमें भेज दिये गये। जेल कौनसी बला है, यह बात अब हमारी समझमें आयी!

पुराने सुपरिण्टेण्डेण्टके ऊपर नरेन्द्रके खूनकी जांच करने का भार दिया गया। उनकी जगह पर नये सुपरिण्टेण्डेण्ट आये। पुराने डाक्टर और जेलर भी बदल दिये गये। हमारा अस्पताल जाना भी एक दम बन्द हो गया। बीमार होने पर

भी अपनी ही कोठरीमें पड़े-पड़े सड़ा करते। किसीके साथ किसीकी बातें न होने पाती थीं। सारा दिन कोठरीमें बैठे बैठे खाओ-पीओ, और चुप चाप बैठे रहो—यही काम था। जेलके और-और हिस्सोंसे भी कोई आदमी ४४ डिग्रीमें नहीं घुसने पाता था।

क्रमशः देशी पहरा बदल कर गोरोंका पहरा मुकरर हुआ। दिन और रातमें पहरा बदल बदल कर गोरे सिपाही हमारी निगरानी करने लगे। जेलके अधिकारियोंको शायद इस बातका सन्देह हो गया था, कि हम लोग जेलसे निकल भागनेकी चेष्टा करेंगे!

पहली दो कोठरियोंमें कन्हाई और सत्येन्द्र रहते थे। हम लोग पांच-सात दिन बाद दूसरी कोठरीमें भेज दिये जाते थे। जब मैं किसी दिन कन्हाई या सत्येन्द्रके पास वाली कोठरीमें पहुंचता, तब रातको उनसे बातें करनेका मौका मिल जाता था। दिनको बातें करनेका तो कोई उपाय ही नहीं था। प्रातः-काल और तीसरे पहर आधे घंटेके लिये हम लोग जेलके आँगन में टहलने पाते थे, पर सबको एक दूसरेसे दूर ही दूर रहना पड़ता था, इस लिये पहरेदारोंकी आँख बचाकर बात करनेकी सुविधा नहीं थी।

सारा दिन चुप चाप बैठे रहना, कितना दुःख दायी है, यह बात सिवा भुक्तभोगीके कोई न समझ सकेगा। एक दिन मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहबसे पढ़नेके लिये कोई किताब मांगी। वे अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए बोले, कि विना सरकारी हुक्मके मैं आप लोगोंके विषयमें कुछ भी नहीं कर सकता—नरेन्द्रका खून हो जानेसे मेरे हाथसे सारे अधिकार छीन लिये गये हैं।

हम लोग जब बाहर टहलने निकलते, तब कन्हाई और सत्येन्द्रकी कोठरीका दरवाज़ा बन्द देखते। एक दिन मैंने देखा, कि कन्हाईलालका दरवाजा खुला हुआ है। हम लोग जब उधर जाने लगे, तब पहरेदारोंने रोका भी नहीं। पीछे सुननेमें आया, कि कन्हाईलालको फाँसीका हुक्म हुआ है—दिन भी मुकर्रर हो चुका है ; इसी लिये पहरेदारोंने हमें उससे अन्तिम देखा देखी करनेके लिये छोड़ दिया है।

अहा, मैंने पास जाकर जो देखा, वह देखने ही लायक था! आज भी वह दृश्य मनके दर्पण पर साफ झलक रहा है—शायद जीवनके अन्तिम दिन तक एकसा झलकता रहेगा! इस जीवनमें मैंने न जाने कितने साधु संन्यासी देखे, पर कन्हाईके चेहरे पर विराजने वाली शान्ति तो किसीके मुखड़े पर नहीं देखी! उसके मुखड़े पर न चिन्ताकी रेखा थी, न विषादकी छाया थी, न चाञ्चल्यका नामोनिशान था! खिले हुए कमलकी भाँति वह

अपने आनन्दसे आपही खिल उठा था! चित्रकूटमें घूमते समय मुझसे एक साधुने कहा था, कि जिसके लिये जीवन और मृत्यु दोनों एक समान हैं, वही परमहंस है। कन्हाईको देखकर वही बात याद हो आयी। जगत्‌में जो कुछ सनातन और सत्य है, वही मानों कोई उसके पास शुभ मुहूर्त्त जान कर रख गया है और उस समय उसके लिये जेल, सिपाही, फाँसी आदि सब कुछ मिथ्या और स्वप्न हो रहा है! पहरेदारोंने कहा, कि जबसे उसने अपनी फाँसीका हुक्म सुना है, तबसे उसका वज़न १६ पाउण्ड बढ़ गया है। रह-रहकर यही बात मनमें आने लगीं, कि चित्त वृत्तिके निरोधका ऐसा भी एक रास्ता है, जिसका पता पतञ्जलि भी न पा सके। जैसे भगवान् अनन्त हैं, वैसेही मनुष्यके बीचमें उनकी लीलाएं भी अनन्त है।

इसके बाद एक दिन सुबहमें कन्हैलालको फांसी हो गयी! अङ्गरेजोंसे शासित भारतवर्षमें उसके लिये स्थान न रहा! न होनेकी बात भी थी! परन्तु फांसीके समय उसके चेहरेपर झलकनेवाली वह निर्भीकता, प्रसन्नता और मुस्कराहट देखकर जेलके अधिकारी एक वारगी ही भौंचकसे हो रहे। एक युरोपिन पहरेदारने वारीन्द्रके पास आकर धीरेसे पूछा,—"तुम्हारे हाथमें ऐसे ऐसे और कितने लड़के हैं?" जो जन-समूह कालीघाटके श्मशानमें कन्हैलालकी चितापर फूल बरसानेके लिये पागलोंकी

तरह दौड़ा हुआ आया था, उसीने यह बात साबित कर दी, कि कन्हैलाल मरकर भी नहीं मरा है!

कुछ दिन जेलकी कोठड़ियोंमें सड़ते रहनेके बाद अलीपुरके दौराजजके सामने हमारा विचार आरम्भ हुआ। दिनमें कुछ घण्टोंके लिये हम लोग जरा खुले मैदानकी हवा खाते और मनुष्योंकी सूरतें देख पाते, इसीसे हमारी मरी मट्टियोंमें मानो जान पड़ जाती। दो एकके सिवा मुकद्दमेका खर्च चलाने लायक औकात और किसीकी नहीं थी। इसी लिये अरविन्दबाबूकी सहायताके निमित्त जो चन्दा जमा हुआ था, उसीसे वकील बैरिस्टरका खच जैसे-तैसे चलने लगा। जो लोग थोड़ी फीस पर सन्तोष न कर सके, वे दो ही चार दिन बाद किनारा कर गये। अन्तमें श्रीयुक्त चित्तरञ्जनदास रुपये पैसेकी मोहमाया छोड़कर हमारे मुकद्दमेकी पैरवी करने लगे।

हाईकोर्टकी जगह अलीपुरमें मुकद्दमेकी पैरवी करनेके लिये आनेमें बैरिस्टरोंको बड़ी असुविधा होती थी, इस लिये किसी किसीने मुकद्दमेको हाईकोर्टमें ले जानेकी चेष्टा भी की थी--खास कर इस लिये भी, कि हाईकोर्टमें विचार जूररों द्वारा होता है। वारीन्द्रका जन्म विलायतमें हुआ था। अतएव वह खासा European Britishborn subject था और चाहता तो

मुकद्दमा हाईकोर्ट ले जाता, परन्तु मैजिस्ट्रेटने जब उससे पूछा, कि तुम विलायती साहबोंका अधिकार चाहते हो या नहीं, तब उसने साफ नाहीं करदी। अतएव हम सबका विचार अलीपुर के जजके इजलासमें चलने लगा।

पर मामले—मुकद्दमेकी बात चूल्हे-भाड़में जाय, हम लोग अपनी चौकड़ीमें ही मस्त थे! अदालतके मैदानकी हवा तो खानेको मिलती ही थी, और भी मजेकी बात यह हुई, कि दो-पहरके समय जलपान करनेको भी मिलता था। जेलका दाल-भात खाते खाते प्राण-पुरुष ऐसे अधमरे हो रहे थे, कि यदि अनन्तकाल तक मुकद्दमा चलता रहता, तो भी इस जलपानकी खातिर वे झटपट इस व्यवस्थापर राजी हो जाते।

कोर्टमें आते या वहांसे जाते समय हमारी हथकड़ियोंमें सांकल लगादी जाती थी। दोपहरको पाखाने पेशाबकी हाजत मालूम होनेपर पुलिस हमें हथकड़ी पहनाये, उसी साँकलके सहारे खींच ले जाती थी। हमें अपने लिये कोई चिन्ता नहीं थी, नङ्गेको शर्मसे क्या वास्ता? जिसका कोई मान ही नहीं, उसकी मानहानि क्या होगी? परन्तु अरविन्द बाबूके हाथोंमें हथकड़ी पड़ी देख और उन्हें भी अपनी ही तरह साँकलके सहारे घसीटे जाते देखकर मनके भीतर विद्रोहकी आग भड़क

उठती थी। पर वे बड़े सीधे-सादे भलेमानसकी तरह चुपचाप बिना किसी तरहकी आपत्ति किये, सब कुछ सह रहे थे।

गवाहपर गवाह आकर हमारे विरुद्ध गवाही दे जाते, पर हमें ऐसा मालूम पड़ता, मानों थियेटर देखने आये हों। वकील बारिस्टरोंकी बहस तथा जिरह और पुलिसवालोंकी दौड़धूप देखकर यही मालूम पड़ता, मनों कोई बड़ा भारी तमाशा हो रहा है। कभी कभी तो हमारी हंसी दिल्लगीके मारे अदालत का काम भी बन्द हो जाता था। जज साहब हमें हथकड़ीका भय दिखलाते और बैरिस्टर लोग अरविन्द बाबूके पास दौड़े हुए आकर कहते, कि जरा इन लड़कोंको शान्त कीजिये। पर अरविन्द बाबू चुपचाप पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह एक कोनेमें बैठे रह जाते, बारिस्टरोंकी बातके जवाबमें इतना ही भर कह देते थे, कि इन लड़कोंपर मेरा कोई वश नहीं है।

मुकद्दमेकी और और बातें तो भूलसी गयी हैं, पर इन्स्पेक्टर शमसुलआलमकी बात आज तक नहीं भूली। हमारे खिलाफ गवाही और सबूत इकट्ठा करनेका भार उन्हींपर था। मीठी-मीठी बातें कहकर किस तरह काम निकालना होता है, यह वे भली भांति जानते थे। इससे लड़के उन्हें देख देखकर यह गीत गाने लगते थे:—

"आये सरकारके खैरख्वाह।

टट्टू खुशामदके, लट्टू गुलामीके, पैसेकी केवल चाह,
बुरा मनाते हमारा हैं, निसि दिन लूटा चाहैं वाह वाह।
दूर नहीं है, आता है वह दिन, रोओगे तुम ज़ार ज़ार।
घरमें न होगा प्राणी तुम्हारे, रहेंगे कुत्ते और स्यार।"

हमारा मुकद्दमा खतम हो जानेपर सरकारने उनको खूब तरक्की करदी, पर भाग्यकी निठुराईसे वे उस पद-गौरवको बहुत दिनतक न भोगने पाये!

कोर्ट इन्स्पेक्टर श्रीयुत अब्दुर रहमान साहबकी भी बात याद आती है; क्योंकि हमारे नाश्ते-पानीका इन्तजाम आप ही के हाथमें था। दैत्यकुलमें जैसे प्रह्लाद भक्त हुए थे, वैसे ही तमाम पुलिस कर्मचारियोंमें अकेले वही एक सज्जन थे! शायद हमें कालेपानीकी सजा दी जायगी, यही सोचकर उनके चेहरेपर जो करुणाकी तसवीर खिंच जाती थी, वह आजतक आँखोंके सामने घूम रही है!

पर यह सब बाहरी बातें हमें उतना नहीं घबराती थीं। उस समय हमारे अन्तरमें ही विप्लव आरम्भ हो गया था, वही उन दिनों हमारे लिये मुकद्दमेकी अपेक्षा अधिक सत्य था।

आठवां परिच्छेद ।





सिर्फ किसी कामके ही बहाने जिन लोगोंमें एकता होती है, उनकी एकता वह काम बन्द होते ही मिट जाती है। जो लोग विप्लव-पन्थी होते हैं, उन सभीको भावनाका विषय एक नहीं होता। देशकी पराधीनता दूर करना तो सभी जानते हैं : पर स्वाधीन होनेके बाद देशका सङ्गठन किस प्रकार करना होगा, इस वियमें सबकी एक राय नहीं होती। इसके सिवा हम लोग जो पकड़े गये, उसमें कितना हमारा अपना दोष है और कितना घटनाचक्रका, इस बारेमें हम लोगोंमें परस्पर खूब कड़ी-कड़ी समालोचनाएं हुआ करतीं। बाहर रहने पर काम-धन्धेकी भीड़ भाड़में जो सब भेद दबे छिपे थे, वे पकड़े जाने पर फूट-फूट कर बाहर होने लगे।

एक दल केवल धर्मचर्चामें ही लगा रहता था। जो लोग सुधरी हुई अर्थात् युरोपियन राजनीतिके उपासक थे, वे इस दलकी खिल्ली उड़ाया करते थे। इसी समय हेमचन्द्रने हम लोगों-में "भक्तितत्व कुज्झटिका" की सृष्टि की। उसने हमें यह

जंचाना शुरू किया कि भक्तितत्वमें प्रवेश करनेसे मनुष्यकी बुद्धि प्रकाश पाती है, वह सब कर्म-बन्धनसे छुटकारा पा जाता है! इनके बीचमें बैठे हुए दोनों दल अपने मतका प्रचार करते रहते थे। देवव्रत धर्मकी व्याख्या करते, तो हेमचन्द्र धार्मिकोंके नाम पर दिल्लगीके गाने बनाया करते! वारीन्द्र एक कोनेमें बैठा दो-चार लड़कोंको साथ लिये हुए धर्मालोचना करता अथवा कभी चुप चाप पड़ा-पड़ा आराम करता था। मैं दोनों ही दलोंका रस लूटता रहता था।

इस हंसी-मज़ाक और दल-बन्दीकी गड़बड़में केवल अरविन्द बाबू ही चुप चाप लकड़ीके अचल कुन्देकी तरह बैठे रहते थे। वे किसी बातमें 'हाँ' या 'नहीं' नहीं करते थे। जेलके पहरेदार उनके रहन-सहनके बारेमें तरह-तरहके किस्से सुनाया करते थे। कोई कहता, कि वे रातको सोते ही नहीं। कोई कहता, कि वे पागल हो गये हैं। क्योंकि भात खाते समय वे चूहों, छिपकलियों और चींटियोंको भात खिलाया करते हैं, न कभी नहाते हैं, न मुंह धोते हैं, न कपड़ा धोते हैं—इत्यादि इत्यादि। मामला क्या है, यह जाननेके लिये हमारे मनमें बड़ा कौतुहल होता, पर उनसे कुछ पूछनेकी हिम्मत नहीं होती। हममें से किसीको सिरमें लगानेके लिये तेल नहीं मिलता था, पर हम देखते, कि अरविन्द बाबूके बाल तेलसे सदा चिकने बने रहते

हैं। एक दिन मैंने बड़ा साहस करके पूछा,—"क्या आप नहाते समय सिरमें तेल लगाते हैं?" इसका उत्तर जो अरविन्द बाबूने दिया, वह सुन कर मैं चौंक पड़ा। वे बोले,—"मैं तो कभी नहाता ही नहीं।" मैंने पूछा,—"आपके बाल ऐसे चिकने क्यों कर हुए हैं?" अरविन्द बाबूने कहा,—"साधनके साथ ही साथ मेरे शरीरमें कितनी ही तरहके परिवर्तन होते जाते हैं। मेरे बाल शरीरकी चर्बी (fat) खींच रहे हैं।"

मैंने दो एक संन्यासियोंका भी ऐसा ही हाल देखा था, पर मतलब समझमें नहीं आया। इसके बाद मैंने एक दिन डकके बीचमें बैठे बैठे देखा, कि अरविन्द बाबूकी आँखें शीशेके टुकड़े की तरह स्थिर हैं—जरा भी हिलती डोलती नहीं, पलकें एकदम गिरती नहीं। मैंने कहीं पढ़ा था, कि चित्तकी वृत्ति एकबार ही निरुद्ध हो जानेपर आँखोंमें यह लक्षण दिखाई पड़ता है। दो चार आदमियोंमें मैंने यह बात पायी भी थी, किन्तु हममेंसे किसीको अरविन्द बाबूसे कुछ पूछनेका साहस न हुआ। अन्तमें एक दिन धीरे धीरे उनके पास जाकर शचीनने पूछा,—"आपने साधन करके क्या लाभ किया?" अरविन्द बाबू उस छोटेसे लड़केके कन्धेपर हाथ रखकर बोले,—"मैं जिसे खोज रहा था, उसीको पागया।"

तब हम लोगोंको साहस हुआ और हम लोग उन्हें चारों

ओरसे घेरकर बैठ रहे। उन्होंने हमें अन्तर्जगत्की जो अपूर्व कथा सुनाई, वह हम लोग अच्छी तरह समझ गये हों, सो नहीं, पर यह धारणा हमारे दिलोंमें जमकर बैठ गई, कि इस अद्भुत मनुष्यके जीवनका एकदम नया अध्याय आरम्भ हो गया है। जेलके भीतर ही वैदान्तिक साधना समाप्त कर उन्होंने जो सब तान्त्रिक साधनाएं की थीं, उनका भी कुछ कुछ हाल उन्होंने सुनाया। जेलके बाहर या भीतर हमने कभी उन्हें तन्त्रशास्त्र की आलोचना करते नहीं देखा था। इन सब गुप्त साधनोंका हाल उन्हें कैसे मालूम हुआ? यह पूछनेपर अरविन्द बाबूने कहा,—"एक महापुरुष सूक्ष्म शरीरसे मेरे पास आकर यह सब बातें मुझे सिखला गया है।" मुकद्दमेका परिणाम पूछनेपर उन्होंने कहा,—"मैं छुटकारा पाजाऊंगा।"

सचमुच फल ऐसा ही हुआ। सालभर मुकद्दमा चलनेके बाद जब फैसला हुआ, तब देखा गया कि सचमुच अरविन्द बाबू छोड़ दिये गये हैं। उल्लासकर और बारीन्द्रको फाँसी तथा दस आदमियोंको आजन्म कालेपानीकी सजा हुई। शेष आदमियोंमेंसे बहुतोंको पांच, सात या दस सालकी जेल अथवा कालेपानीका हुक्म हुआ। फांसीका हुक्म सुनकर उल्लासकर हंसता हुआ जेलमें लौट आया और बोला,—"चलो, बड़े झंझटोंसे छुटकारा हो गया!" एक युरोपियन पहरेदारने उसका यह हाल देख,

अपने एक मित्रको पास बुलाकर कहा,—"Look, look, the man is going to be hanged and he laughs. (देखो, देखो, इस आदमीको फाँसी दी जानेवाली है तो भी यह हंस रहा है)" उसके वे दोस्त आयरिश थे। उन्होंने कहा,—"Yes, I know they all laugh at death." (हां, हां, मैं जानता हूं: मौत उनके लिये दिल्लगी है!)

सन् १९०९ ई० के मई महीनेमें फ़ैसला सुनाया गया। हम लोग पन्द्रह-सोलह आदमी बाकी रहे, और सब हंसते-हंसते बाहर चले गये। हमने भी मुस्कराहटके साथ ही उन्हें विदा किया, पर उस मुस्कराहटके भीतरही भीतर एक छातीको टुकड़े-टुकड़े कर देने वाली रुलाई जमा हो रही थी! जीवन एकाएक अवलम्बन-शून्य हो गया! पण्डित ऋषिकेश मूर्त्तिमान् वेदान्तको तरह बोल उठे,—"अरे यार! यह सब कुछ भी नहीं है—निरा दुःस्वप्न है!" हेमचन्द्र छाती कड़ी कर बोले,—"कुछ परवा नहीं। ये दिन भी चले जायेंगे, रहेंगे नहीं।" वारीन्द्र फाँसीका हुक्म सुन, गरदन हिलाकर बोला,—"मँझले भैया (अरविन्द बाबू) कहते हैं, कि तुझे फाँसी न दी जायेगी।" मैं भी सबकी देखा देखी हँसा सही, परन्तु इस वार पहले-पहल मेरी समझमें यह बात आयी, कि वीरका हृदय जिस धातुका बना होता है, मेरा हृदय उस धातुका बना हुआ नहीं है। मन-

नन्हें-नादान बच्चेकी तरह पूरब-पच्छिम भूल गया ! रह-रह कर दिल सर्द आहें भर कर कहने लगा,—"हाय ! क्या सारी ज़िन्दगी जेलखानेमें ही बितानी पड़ेगी ? ओह ! इससे तो फांसी ही अच्छी थी। भगवन् ! यह तुमने कैसी सज़ा दी ?"

भगवान् नामके भी कोई जीव कहीं हैं, यह विश्वास बहुत दिनोंसे मेरे जी से उड़ गया था। लड़कपनमें बाहर झोली-झक्कड़ लेकर साधु बननेके लिये घरसे निकला था। उस समय भगवान्के ऊपर बड़ी भक्ति, बड़ा विश्वास और भारी भरोसा था। मायावती-मठमें स्वामी स्वरूपानन्दसे निर्गुण ब्रह्मवादकी दीक्षा लेनेके बादही वह भक्ति और विश्वास धीरे-धीरे ग़ायब हो गया था। जिस दिन स्वामीजी ने युक्ति, तर्क और मज़ाकके तीखे तीर चलाकर मेरे भगवान्को मार भगाया, उस दिनकी बात मुझे अब तक याद है। इस विशाल मायाके समुद्रमें पड़कर एक दम अकेला निराधार होकर मँझधारमें डूबते-उतराते हुए उस पार निर्विकल्प समाधिमें पहुंचना पड़ेगा, यह सोच कर मेरी देहका सारा खून ठण्डा हो गया। निर्विकल्प समाधिमें डूब कर चुप चाप पड़े रहनेका ही नाम 'मुक्ति' है, यह तत्व मेरे माथेमें बहुत दिन तक न टिकने पाया। अपने ज्ञानमें मनुष्यको कोई चरम तत्व मिलता है या नहीं, इस विषयमें भी बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ। मनमें यही आने लगा, कि निर्विकल्प समाधिसे

लेकर जागृत अवस्था-पर्यन्त सभी अवस्थाएं अनन्तकी एक एक दिशा मात्र हैं। इन दोनों अवस्थाओंके ऊपर नीचे ऐसी-ऐसी अनन्त अवस्थाएं हैं। उस अनन्तके भीतर एक ऐसा सत्य छिपा हुआ है, जो मनुष्यके जीवनमें कर्म-रूपसे प्रकट होनेकी चेष्टा कर रहा है। फिर जीवनको छोड़ कर भागना किस लिये? कर्म समाधिसे छोटा क्यों होने लगा!

कर्मको ही जीवनका श्रेष्ठ उद्देश्य समझ कर मैं स्वदेशी-अन्दोलनमें सम्मिलित हुआ था, श्रीयुत लेलेने जब हम लोगोंमें भक्ति मूलक साधना प्रवर्त्तित करनी चाही थी, तब मैंने घोर पण्डितकी तरह उनके भक्तिवादको हंसीमें उड़ा दिया था। जब सब कुछ उसी अनन्तका रूप है, तब भगवान्‌का जो रूप जगत्‌में प्रकट है, उसे छोड़ कर अन्य रूपका ध्यान करनेकी सार्थकता ही कौनसी है? उस समय लेलेने केवल इतना ही कहा था,—"तुम जो कह रहे हो, उसे यदि समझते भी हो, तब तो मुझे कुछ कहना सुनना ही नहीं है, पर यह बात न भूलना, कि अद्वैतमें भी द्वैतका स्थान है।"

आज जब विधाताने मुझे ज़बरदस्ती कर्मक्षेत्रसे हटा दिया, तब मैं अपने भीतर लाख ढूंढ़ने पर भी कोई सहारा न पा सका। एक अज्ञात-अपूर्व आश्रय पानेके लिये मैं व्याकुल हो

उठा—प्राण का हो-होकर पुकारने लगे,—"रक्षा करो, रक्षा करो !"

विपद्में पर और कुछ हो चाहे नहीं, मनुष्यको अपने आपको पह का अवसर मिल जाता है। दौरा अदालतका फैसला होर्त हमारे पैरोंमें बेड़ी डालकर हमें कोठरीमें ढकेल दिया गया सारा दिन चुपचाप बैठे-बैठे मन पागलसा हो गया । f के भीतर उन्मत्त चिन्ताओंकी तरङ्ग लहरें मारती हुई सिर ड़ कर निकलनेकी चेष्टा करने लगीं। सारा दिन किस मैं : मुंह बात करनेका भी उपाय नहीं था।

था दिन सन्ध्याके समय मैं इसी तरह चुपचाप बैठा हुआ उ थाक्रत सी समय पास वाली एक कोठरीमें पड़ा हुआ एक लथ चिल्ला चिल्ला कर गीत गाने लगा। उस गीतका ताल, त ौर सुरसे वैसा कुछ सरोकार नहीं था ; पर उसे सुनकर ब भर पेट हंसा और हंसते-हंसते ज़मीनमें लोट गया था ह्य । उस हंसीसे मेरे सिरका भयङ्कर दर्द छूट गया था, यह त मुझे अच्छी तरह याद है। गाना सुन कर चारों ओरसे ुरोपियन पहरेदार इकट्ठे हो गये। दूसरे ही दिनसे बेचारेको ार दिन तक बुरा खाना (Penal diet) खानेको दिया गया।

और एक लड़केने एक दिन दीवारसे चूना खिसकाकर

किवाड़ पर लिख दिया—"Long live Kanailall" (कन्हाई लाल चिरजीवी हो)—बस उसे भी चार दिनकी सज़ा हुई !

पहरेदार सब हमें सदा दुःख देनेकी ही फिक्रमें रहते थे ; पर उनमें भी दो-एक भले आदमी थे। हममें से जिस किसीको खानेकी सज़ा दी जाती, उसके लिये एक युरोपियन पहरेदार जेबमें केले छिपा कर लाता था। छिपे-छिपे उसे सब केले खिलाकर वह बेचारा उनके छिलके जेबमें भर कर बाहर लेजाता था !

एक लम्बे चौड़े डील-डौल वाला हाइलैण्डर पहरेदार बीच बीचमें हमें खूब सताया करता और अपना प्रहरी-जन्म सफल करता था। हम लोगोंने उसका नाम रखा था—Ruffian worder (बदमाश पहरेदार)। वह हम लोगोंको लेकचर झाड़ झाड़ कर यह समझाने की चेष्टा करता, कि मैं और मेरे जाति-भाई भारतवर्षको सभ्य करनेही के लिये यहां आये हैं। पर सबसे बढ़ कर मिठ-बोला शैतान स्वयं चीफ़ वार्डर था। वह तो कभी कभी हमें धर्मकी तत्वकथा भी सुनाया करता था। वह कहता, कि यदि हम जीवनके शेष दिन अच्छी राहसे चलें तो स्वर्गमें पहुंचने पर हमारे साथ अंगरेजोंका सा व्यवहार होने लगेगा। हायरे अंगरेजोंका स्वर्ग ! जेलकी मार गाली तो

सहने लायक थी ; पर उनके मुंहसे धर्मकी बात सुन कर तो देह झुलस जाती थी।

हम लोगोंमें हेमचन्द्र, चित्र-विद्यामें बड़ेही चतुर थे। वे दीवारसे चूना, सिमेण्ट, ईंटकी सुर्खी आदि निकाल कर तरह तरहके रङ्ग बनाते और दीवारों पर सुन्दर-सुन्दर चित्र खींचा करते थे। पहरेदारोंके अत्याचारसे बचनेके लिये वे बीच-बीचमें काग़ज़ पर नखसे तरह-तरहके चित्र उन्हें बना कर दिया करते थे।

जो चित्र बनाना नहीं जानते थे, वे बीच-बीचमें दीवार पर कविताही लिखकर अपने जी की कसक मिटाया करते थे। एक दिन मैंने एक कोठरीमें जाकर देखा, कि किसी अज्ञातनामा कविने दुःखसे ऊबकर दीवार पर यह कविता लिख रखी है:—

"देखो, मेरी हड्डी-हड्डी हिल गयी।
पाट छिलते देह सारी छिल गयी॥
रंग गोरा दमादमता खूब सा।
सारी रङ्गत मुंहकी मिट्टीमें मिल गयी॥
साले पहरेदार देते गालियाँ।
देके गाली उनकी मूंछें खिल गयीं।"

उस समय हम लोगोंको 'पाट' छीलनेका काम दिया गया था।

कभी-कभी एक-आध अच्छी कविता भी दिखाई पड़ जाती थी। मुझे कविता प्रायः याद नहीं रहती, पर न जाने ये दो चार सतरें किस तरह स्मृतिमें अटकी रह गयी हैं:—

"राधा! तुम्हारे लाल चरणों पर निछावर प्राण हैं!
आनन्दसे यह प्राण मेरे उनपै ही बलिदान हैं!"

हाय रे मनुष्यके प्राण! जेलकी कोठरीमें बन्द रह कर भी तुम राधाके युगल लाल चरणों पर न्यौछावर होनेको तैयार हो!

दौरा अदालतका फ़ैसला सुनाये जानेके बादही हाइकोर्टमें हमारी ओरसे अपील दायर हो गयी थी। नवम्बर महीनेमें उसका भी फ़ैसला सुना दिया गया। उल्लासकर और वारीन्द्रकी फाँसीका हुक्म रद्द होकर जन्म भर कालेपानीका हुक्म हुआ। बहुतोंकी सज़ा घट गयी। केवल मेरा और हेमचन्द्रका यावज्जीवन द्वीपान्तर वाला दाग ज्योंका त्यों रहा!

कहीं हम लोग आपही पाटकी रस्सी बट कर फाँसी न लगा लें, इसी डरसे पाट छीलनेका काम हमारे हाथसे ले लिया गया।

थोड़े ही दिनके अन्दर कालेपानीकी सज़ा पाने वालोंके सिवा और सब कैदी भिन्न-भिन्न जेलोंमें भेज दिये गये। हम लोग अण्डामन द्वीपके जहाज़की इन्तज़ारीमें बैठे रहे।



नवां परिच्छेद ।





ई कोर्टसे बाहर होते ही पुलिसवालोंकी आवा जाई बहुत बढ़ गयी—शायद सजा घटा देनेके लोभसे कोई कुछ नयी बात बतला दे। हमारी गिरिफ्तारीके बादसे नाना सूत्रों द्वारा इतनी बातें प्रकट हो गयी थीं, कि शायद अब पुलिसवालोंको अधिक कुछ मालूम करनेको नहीं रह गया था। तो भी पुलिसवालोंने एकबार ठोंकपीट कर देख लिया, कि और भी कुछ मालूम होता है या नहीं। निर्जन कैदखानेमें पड़ा हुआ मनुष्यका मन दुसरेसे बातें करनेके लिये कैसा व्याकुल हो जाता है, यह बात पुलिसवाले खूब जानते हैं। यदि दो एक महीनों तक आदमी किसीसे बातें न करने पाये, तो उसकी इच्छा छिपकली और झिल्लीसे बातें करनेकी होने लगती है—पुलिसवाले तो भला मनुष्य ही ठहरे। दो चार इधर उधरकी बातें करते करते दो एक छिपी हुई बात भी मुंहसे निकल ही पड़ती है। और २०। ३० आदमियोंके पेटकी थाह लगाते लगाते कमसे कम चार पांच जने तो कुछ कामकी बात कह ही डालते हैं—इसी भरोसेपर पुलिस चल रही थी।

भण्डाफोड़ होनेका एक कारण और भी था। वह यह, कि यद्यपि हमारी जमात 'गुप्त समिति' थी, तथापि कुछ तो जानकारीकी कमीसे और कुछ रुपये पैसेकी तङ्गीसे हमारा कामकाज ठीक ढङ्गसे न चलाया जा सका। युरोपकी गुप्त समितियोंके भिन्न भिन्न विभाग भिन्न भिन्न अध्यक्षोंके नीचे रहते हैं—एक विभागका आदमी बिना मतलबके दूसरे विभागवालोंसे मिलने-जुलनेका मौका नहीं पाता। समितिके अध्यक्षोंकी बराबर यही चेष्टा रहती है, कि सब लोग अपना अपना काम करें, दूसरेका हाल न जानने पांये। इस नियमके कारण एक दो मनुष्योंकी कमजोरीसे सारा काम बिगड़ने नहीं पाता। कई कारणोंसे हम लोग वैसी व्यवस्था न कर सके। इसके सिवा हम लोग स्वाभाविक गपोड़ेवाज़ भी तो थे। हमारे देशकी प्रत्येक समितिके भीतर दो एक सरकारी गवाह मिल गये, इसका प्रधान कारण कार्य-प्रणालीकी शिथिलता ही है। दलबन्दी और आपसकी फूटके कारण भी प्रायः बहुतसी समितियोंकी गुप्त बातें जगजाहिर हो गयीं। जिस जातिने बहुत दिनोंसे शक्तिका मज़ा नहीं चखा, उसके नेता पहले पहल प्रभुता पाकर अकड़ जायें, तो आश्चर्य ही क्या है? और नेताओंमें जहाँ अनुचित प्रभुत्व दिखलानेकी इच्छा हो, वहां उनके अनुयायियोंमें ईर्षा और असन्तोष तो होना ही चाहिये!

एक सुभीतेकी बात यही थी, कि केवल हमीं गपोड़ न थे। जो युरोपियन सिपाही हमारे पहरेपर थे, वे भी सारा दिन जेल में बन्द रहकर घबरा उठते थे। उनमें भी खूब दलबन्दी थी। एक दल दूसरे दलको दबानेके लिये बीच बीचमें हमारी सहायता लेना चाहता था। उनसे बातें कर करके हम लोग भी जेलकी बहुतसी गुप्त बातें मालूम कर लेते थे।

कुछ दिन ऐसे ही कट जानेपर हमने सुना, कि हमें अण्डेमन (कालापानी) भेजनेके लिये Civil Surgeon हमारी परीक्षा करने आयंगे। यथा-समय सिविल-सर्जन आपहुंचे और पेट दबाकर, आँखें देखकर सात आदमियोंके भवसागर पार जानेकी व्यवस्था कर गये! सुधीर और मैं उन दिनोंतक रक्तामाशय-रोगसे पीड़ित थे, इसी लिये हमें कुछ दिन और रुक जाना पड़ा।

साधारण कैदियोंके लिये यह नियम है, कि एक बार बीमारीके कारण अण्डमानकी यात्रा रुक जानेपर तीन महीने तक उनकी यात्रा रोकदी जाती है, पर हमारे सम्बन्धमें वह नियम लागू नहीं हुआ। सरकार बहादुरके हुक्मसे हम लोग छः सप्ताहमें ही भेज दिये गये।

जेलसे निकलते ही हमने एक बार सदाके लिये देशको भर-

नजर देख लिया। एक दिन तड़के ही हमें हथकड़ी पहना कर गाड़ीमें बैठाया गया। दोनों ओर दो सार्जेण्ट बैठे और हमें लिये हुई गाड़ी खिदिरपुर डक की ओर चली।

जहाजमें चढ़ाकर एक सार्जेण्टने हमसे दिल्लगी करते हुए कहा,—Now say, 'My native land, forewell." अब कहो न, कि जन्मभूमि! बस हम तुमसे बिदा होते हैं?) इस पर हम लोगोंने हंसकर कहा,—"An revoir." (देखें, अब फिर कब मिलना होता है!) कह तो दिया, पर लौटनेकी आशा करना, बड़े दुस्साहसका काम मालूम पड़ने लगा।

राजनीतिक कैदी सिर्फ हमीं दो थे—सुधीर और मैं। जहाज में हम दोनों एक कमरेमें थे और दूसरेमें और और कैदी भरे थे। जहाजका एक चुना हुआ अफसर आकर हमारे फोटो उतारकर लेगया। उसने वह सब फोटो विलायतके किसी अखबारमें छापनेके लिये भेज दिये। उसकी बात सुनते ही मैंने अपनी पगड़ी अच्छी तरह सुधारकर बाँधली—मुफ्तमें बड़ा आदमी बन जाऊं, तो हर्ज ही क्या है!

तीन दिन, तीन रात जहामें चिउड़ा चबाते हुए जाना पड़ेगा, यह सोचकर सुधीर तो बिगड़ उठा। वह हाथीका सा मस्त

जवान, दो मुट्ठी चिउड़ेसे उसका क्या होना-जाना था ? पुलिसके एक पञ्जाबी मुसलमान हवलदारने कहा,—"बाबू यदि हमारे हाथका भात खाओ, तो हम दे सकते हैं।" मुसलमानोंमें सहानुभूति भी है और भात खिलाकर हिन्दूकी जाति लेनेकी इच्छा भी कुछ मौजूद रहती है। तो भी हमने कहा,—"बहुत अच्छी बात है। हमारी जाति ऐसी इस्पातकी बनी है, कि किसीके हाथकी रसोई खानेसे टूट नहीं सकती।" वहीं कुछ सिख हवलदार भी थे। उन्होंने सोचा, कि हम लोग पेटकी मारसे अपना परलोक बिगाड़नेको मुस्तैद हैं, इसी लिये उन्होंने भी अपने हाथकी रसोई हमें खिलानी चाही। हमने बिना सींग-पूंछ हिलाये दोनों दलोंको बनायी हुई रसोई खाकर पेटकी ज्वाला भी बुझायी और अपनी उदारता भी प्रमाणित कर दी। सिक्खोंने सोचा, कि बंगाली बाबू चाहे लाख पढ़े-लिखे बुद्धिमान हों, पर इन्हें धर्माधर्मका कुछ विचार बिलकुल नहीं है। जो हो, धर्म गया, कि रहा, यह तो हम ठीक नहीं कह सकते ; पर दो कौर भात खाकर प्राण तो बचही गये ! उसी जहाज पर नोआखाली ज़िलेके कुछ बंगाली मुसलमान भी थे, उनके हाथका भात और कुम्हड़ेकी पकौड़ी तो अमृतही मालूम पड़ती थी।

जो हो किसी तरह तीन दिन जहाज़में बिता कर हम लोग चौथे दिन पोर्टब्लेयर पहुंचे। दूरसे जगह बड़ी सुहावनी मालूम

पड़ी। कतारको कतार नारियलके पेड़ दोनों ओर लगे थे और उनके बीचमें साहबोंके बंगले बने थे। ठीक मालूम होता था, मानों कोई चौखठेमें मढ़ी हुई तस्वीर हो। भीतरकी बात उस समय किसे मालूम थी?

कुछ दूर पर एक बड़ा भारी तीनतल्ला मकान दिखलाकर एक सिपाहीने कहा—"वही कालेपानीकी जेल है, तुम्हें वहीं रहना होगा!"

जहाज़ बन्दरगाहमें आ लगा। डाक्टरने आकर सबकी परीक्षा की। इसके बाद हम लोग तीर पर उतरे और सिर पर बिछावन धरे बेड़ी बजाते हुए जेलकी ओर चले।

जेलमें घुसतेही एक मोटे-ताजे ठिगने अङ्गरेजने हमारे सिरसे पैर तक देखकर कहा,—"So, here you are last! well, you see that block yonder. It is there that we tame lions, you will meet your friends there, but mind you, don't talk." (अच्छा, तुम लोग भी आही गये! यह देखो, सामने जो मकान है, उसीमें हम लोग शेर पालते हैं। वहीं तुम अपने मित्रोंको भी देखोगे; लेकिन खबरदार बातचीत न करना।"

हम लोगोंने उस अङ्गरेजको भली भांति देखकर उसकी नाप ले ली। वह लम्बाईमें ४ और मोटाईमें प्रायः ३ फुट था। मोटी बात यह है, कि अगर किसी बड़े भारी भदैया मेढ़कको कोट-पतलून और टोप पहना देने पर वह जैसा मालूम पड़ेगा, वह भी करीब-करीब वैसाही मालूम पड़ता था। उस समय हमें यह नहीं मालूम था, कि ये ही हज़रत बेरी साहब हैं, जो जेलके हर्त्ता कर्त्ता और विधाता हैं। उसका वह "बुलडागका" (शिकारी कुत्तेका) सा चेहरा देखतेही ऐसा मालूम होता था, मानों उनका जन्मही कैदियोंको दुःख देनेके लिये हुआ है। भगवान्ने अकेलेमें बैठकर इसे कालेपानीके कैदियों पर हुकूमत करनेके लियेही सिरजा था। इसे देखकर हमें Uncle Tom's Cabin का लेग्री याद आ जाता था।

भविष्यत्में इसके साथ हमारी बड़ी गहरी जान-पहचान हो गयी; क्योंकि लगभग ग्यारह साल तक इसीके अधीन इस जेलमें रहना पड़ा।

यह रोमन-कैथोलिक सम्प्रदायका आयरिश साल भर तक कैदियोंको दुःख दे-देकर जो पापका बोझा अपने कन्धे पर चढ़ाता था, उसे ईसामसीहके जन्मके दिन गिरजाघरमें जाकर पादड़ी साहबके पैरों पर पटक आता था! साल भरमें इसी

एक दिन इसके चेहरे पर शान्ति या नम्रता झलकती थी। उस दिन यह किसी कैदीको न सताता, पर बाकीके ३६४ दिन ता कैदियोंसे त्राहि त्राहि करा देता था।

कैदियोंमें यह मैंने स्वभावसा पाया, कि वे दुष्ट प्रकृतिवालोंके प्रति सहज ही आकृष्ट हो जाते और ऐसेही लोगोंकी अधीनता भी झट स्वीकार कर लेते हैं। बेरी साहबके हाथों मार खाने पर मैंने बहुतोंको यह कहते सुना, कि साला बड़ा बहादुर है! जो सीधे सादे भले मानस हैं, वे कैदियोंके हिसाबसे मर्द नहीं औरत हैं। कैदी अगर कोई कुकार्य करके भगवान्‌का नाम लेकर दया माँगते तो बेरी साहब कहते—"यह जेलखाना मेरा राज्य है—भगवान्‌के राज्यसे यह बाहर है। मैं ३० वर्षसे कालेपानीमें हूं; पर कभी मैंने यहां भगवान्‌को आते नहीं देखा।" यह बात बेरी साहबके मुंहसे निकली हुई होने पर भी बिलकुल सच थी!

जेलमें घुसते ही सबसे पहले तरह तरहके लोगोंके ऊपर नजर पड़ती है। बङ्गाली, हिन्दुस्तानी, पञ्जाबी, पठान, सिन्धी, बर्मी, मदरासी—सब जातियोंकी खिचड़ीसी पक गयी है। हिन्दू और मुसलमानोंकी संख्या प्रायः बराबर ही है—बर्मी भी बहुतसे हैं। भारतवर्षमें मुसलमानोंकी संख्या हिन्दुओंकी चौथाई है,

पर जेलखानेमें दोनोंकी संख्या बराबर कैसे हो गयी, यह सोचने पर दोनों जातियोंके स्वभावका पार्थक्य झट याद आजाता है। ब्रह्मदेशकी जनसंख्या कुल एक करोड़ है, अर्थात् समस्त बङ्गालियोंके चार हिस्सेका एक हिस्सा है; परन्तु यहां बङ्गालियोंसे ब्रह्मदेश वालोंकी ही संख्या बढ़ी हुई है। खून और मारपीट करनेमें वहांवाले बड़े बहादुर होते हैं। अभी हाल ही में उन्होंने स्वाधीतना खोयी है, इसी लिये हिन्दुस्तानियोंकी तरह एक बारगी बछियाके ताऊ नहीं बन गये हैं। हिन्दुस्थानके सिवा और और देशोंके उच्चवंशीय आदमियोंकी संख्या बहुत ही कम है। शिक्षा प्रचारकी अधिकताके कारण हो या प्रकृतिकी निरीहताके कारण—मदरासी ब्राह्मण तो वहां नहींसे हैं। हम लोग जिस समय वहां पहुंचे उस समय जेलमें पठान ही बहुत भरे थे। सब जातियोंको एक ही जगह रखनेसे दुर्बल जातियोंपर अन्याय अत्याचार खूब होता है, यह तो कहना ही व्यर्थ है।

कुछ ही दिन वहां रहनेसे हमें मालूम हो गया, कि जेलखाने में कमजोरपर इन्साफ होनेकी कोई सम्भावना नहीं। कर्मचारियोंके विरुद्ध गवाही-साक्षी या सबूत देनेकी हिम्मत किसी कैदी में नहीं। दूसरोंके लिये कौन अपने सिरपर आफत ढाये? सब अपनी ही अपनी जानको रोते हैं। जो खुशामदी टट्टू हैं, धारा प्रवाह झूठ बोल सकते हैं, वे ही अधिकारियोंकी निगाहमें भले

आदमी जंचते हैं और उन्हींपर उनकी कृपा भी होती है। और जो न्याय-विचारकी आशासे दूसरोंके लिये लड़ने जाते हैं, उनके ऊपर तो बिना बादलके वज्र गिरता है—उनपर झूठा मामला चलाया जाकर मुफ्त ही सजा दिलवाई जाती है। इस सबका नतीजा यह होता है, कि जो कैदी यहां आते हैं, उनमेंसे एक भी कैद भोगकर सच्चरित्र नहीं हो सकता।

सच पूछिये, तो वहांके अधिकारी इस बातको कोई चेष्टा नहीं करते, कि कैदी अच्छे भले आदमी बनें। शायद यह बात उनके दिमागमें ही नहीं आती, कि जेलखानेकी सार्थकता इसीमें है, कि यहां आकर दुष्ट चरित्र वाले सुधर जायं। कैदी उनके लिये काम करनेकी मशीन हैं और जो अफसर उन्हें मार-पीट कर उनसे जितना ही अधिक काम लेता है, वह उतना ही होशि-यार समझा जाता है और उसकी तरक्की भी धड़ाधड़ होती जाती है।

और भी एक मजेकी बात यह है, कि उस अन्धेर नगरीमें 'टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' है! चाहे कोई किसी अपराध-का अपराधी क्यों न हो, वहां सबके साथ एकही सा व्यवहार किया जाता है। कड़े या हलके परिश्रमके साथ भारी या मामूली जुर्मका कोई सरोकार नहीं होता। यदि कहीं नारिय-

लकी जटाके तार (wire) भेजनेकी ज़रूरत हुई तो सभीको जटा उतार कर तार निकालने के काममें लगा दिया जाता है और जब नारियल या सरसोंके तेलकी ज़रूरत होती, तब प्रायः सब किसीको कोल्हू पेलना पड़ता है। सब जगह तिजारत चल रही है! कैदी बेचारे सरकार बहादुरके गुलाम हैं। अपनी देहका खून पानीकी तरह बहा कर सरकारका खजाना भर देनेमें ही उनके जीवनकी सार्थकता है!

अपराधकी बड़ाई-छुटाईके अनुसार कैदियोंका श्रेणी विभाग करनेका नियम सरकारी पोथियोंमें है तो सही, पर कामके समय वह भुला दिया जाता है। किस तरह जेलकी आमदनी बढ़ेगी, इसी ओर सुपरिण्टेण्डेण्टसे लेकर छोटेसे छोटे अफ़सर तकका ध्यान रहता है। कैदी मरे या जिये, इसकी परवा कौन करता है? भारतवर्षमें न तो आदमियोंकी कमी है, न ऐसे अङ्गरेज जजोंका टोटा है, जो हर महीने ज़रूरत मुताबिक कैदी जहाज़ पर लदवा दे सकते हैं!

एक बार मैंने जेलखानेमें एक पागलको देखा था। उसका घर बर्दमान जिलेमें था। वह जेलखानेमें झाड़ू लगाता था। उसे अपने घर तककी वैसी याद नहीं रह गयी थी। वह यह भी अच्छी तरह नहीं जानता था, कि उसे किस लिये कालेपानी

की सज़ा दी गयी। एक दिन मैंने उससे पूछा,—"तुम कितने भाई हो?" उसने कहा,—"सात।" मैंने उनके नाम पूछे, तब उसने उंगली पर गिनकर पाँच भाइयोंके नाम तो बता दिये, पर दो जनोंके नाम न बता सका—बोला, कि भूल गया हूं। उसके खाने-पीनेका भी कोई ठीक-ठिकाना नहीं था। कभी तो योंही चुपचाप बैठा रहता और कभी सारा दिन रास्तेमें झाड़ू लगाता फिरता था। जरासा लक्ष्य करनेसे ही यह समझमें आ जाता था, कि उसका सिर फिर गया है। उसे पागलखानेमें न भेज कर किस इन्साफवर हाकिमने यावज्जीवन द्वीपान्तरका दण्ड दिया, सो मालूम नहीं ऐसे-ऐसे बहुतसे दृष्टान्त जेलखानेमें मिलते हैं।

हाँ कभी कभी ऐसे भी उस्ताद मिल जाते हैं, जो कामके डरसे पागलपनका ढङ्ग रचते हैं। एक बङ्गाली ऐसाही था। एक दिन रङ्ग बेरङ्ग देखकर उसने सिरमें कपड़ा लपेट कर गाना शुरू कर दिया। आँखोंमें चूनेकी किरकिरी लगा कर उसने आँखोंको खूब लाल कर लिया और वाही तबाही बकने लगा। भात खाने बैठा, तो मुंह फेर लिया। पहरेदार उसे पकड़ कर जेलरके पास ले गये। जेलरने उसके हाथमें दो केले लाकर दिये। केलोंका गूदा खाकर उसने उनके छिलके भी चबाने शुरू कर दिये। जेलरने सोचा, कि यह सचमुच पागल है,

नहीं तो छिलके क्यों खाता? जब वह जेलरके यहांसे लौट आया, तब मैंने पूछा,—"क्यों रे, तू छिलके क्यों चबा रहा था?" उसने कहा,—"क्या करूं बाबू साहब! सालेको बेवकूफ बनाये बिना कामही नहीं चलता। बिना कुछ कष्ट स्वीकार किये पागल थोड़े बना जाता है?"



दसवां परिच्छेद ।





गालमें एक कहावत है,—“उठते लात और बैठते झाड़ू ।” इस कहावतका मतलब क्या है, वह जेलखानेमें चार दिन रहनेपर ही अच्छी तरह समझमें आया । एक तो हम लोग आपसमें बातें करने भी नहीं पाते थे, तिसपर जहां हमलोग रखे गये थे, वहां केवल मद्रासी और ब्रह्मी भरे थे । किसोकी बात समझमें नहीं आती थी । सारा दिन बैठे बैठे नारियलकी जटा छुड़ाना और सांझको अन्धेरी कोठरीमें कम्बल ओढ़कर सो रहना—यही काम थे । जो पूरा २ काम न बजा सकता था, इस लिये अफसरकी गाली और दांतकी किटकिट सुननी पड़ती थी । पर क्या करूं, लाचारी थी । एक दिन सांझको मैं गालियां खाकर मुंह लटकाये हुए अपनी कोठरीमें बैठा हुआ था । इतनेमें एक पठान परेदारने आकर पूछा,—“क्यों बाबू ! क्या हुआ है ?” मैंने गालियोंकी बात कही । सब सुनकर उसने कहा,—“देखो बाबू ! मैं प्रायः पांच सालसे इसी जेलमें हूं । जो लोग गालियाँ खाकर मन मसोसते रहते हैं, वे या तो पागल हो जाते हैं या मारपीट करके फाँसी पड़ते हैं । इन सब बातोंका खयाल दिलसे दूर कर देना ही अच्छा है ! खुदा चाहेगा, तो ये दिन भी कट जायेंगे ।”

चुपचाप गालियां सहलेनेकी आदत कभी भी नहीं थी, पर उस पठानके मुंहसे उस रातको खुदाका नाम बड़ा प्यारा मालूम हुआ। मनुष्य जब सब आश्रय खोकर पूरब-पच्छिम भूल जाता है, तब वही अनाथोंका नाथ याद आता है। इसीसे मैं जेलखानेके अन्दर बड़े बड़े पुराने पापियोंको भी माला फेरते देखता था। पहले यह सब देखकर मुझे बड़ी हंसी आती थी, पर पीछे सोचा, कि इसमें हंसनेकी कौनसी बात है? आर्त भक्त भी तो भगवान्‌का ही भक्त है।

पर दुःखकी मात्रा दिन दिन बढ़ती ही गयी। भारत-सरकारके हुक्मसे जब नये सुपरिण्टेण्डेण्ट आकर हमसे बैलोंकी तरह तेल पेलवाने लगे, तब रह रहकर मनमें विद्रोहके लक्षण दिखाई दे जाते थे। फांसीपर लटकर चटपट प्राण देदेना सहज है, पर दिन दिन तिल तिल करके मरना, वैसा आसान नहीं है। भारतीय दण्ड विधिकी १२१ वीं धाराके अनुसार जिन्हें यावज्जीवन द्वीपान्तरका दण्ड दिया जाता है, उनमेंसे शायद ही कोई जीता जागता घर लौटा हो। अण्डमान-निकोबर-मैनुएलके अनुसार यावज्जीवनके मानी हैं २५ वर्ष। इतने दिन बीतनेपर भी छोड़ना, न छोड़ना, सरकारकी इच्छा पर है। यही सोचकर जीमें आता कि यह कर्मभोग न भोगकर गलेमें फाँसी लगाकर मर जाऊं, तो अच्छा है, पर साहस न हुआ। शायद मरनेके लिये जैसा कड़ा

दिल चाहिये, वैसा मेरा दिल नहीं था। लाचार अपनी शक्ति-भर तेल पेल पेलकर सरकारका तेल-भण्डार भरने लगा! एक दिनकी बात मुझे अच्छी तरह याद है। सबेरेसे सांझ तक घानी चलाकर भी मैं ३० पौण्ड तेल न पेल सका। हाथ पैर ऐसे ढीले हो गये, कि मालूम पड़ता था, कि मैं अभी चक्कर खाकर गिर पड़ूंगा। तिसपर सारा दिन पहरेदार कामके लिये गालियोंकी बौछार करता रहा। सांझको वह मुझे जेलरके पास ले गया। जेलरने बड़ी ही मीठी भाषामें मेरे पिताका श्राद्धकर पीठपर बेंत मारनेका भय दिखाया। उनके निकटसे चले आनेपर जब मैं खाने बैठा, तब मारे दुःख और अभिमानके पेट फूल उठा—कण्ठ बन्द हो गया। यह देख एक हिन्दू पहरेदारको कुछ दया आगयी। उसने कहा,—"बाबू लोग बड़ो तकलीफमें हैं, जरा खाना अधिक देना।" उसकी यह बात सुनकर जोरसे रोपड़नेकी इच्छा हुई, इसी लिये मैंने अपने हाथों अपना गला दबा रखा। ऐसे समयमें मार गाली भले ही सहली जाय, पर सहानुभूति नहीं सही जाती!

रविवारको भी काम करनेसे जान नहीं बचती थी। नीचे बालटीमें भर भरकर पानी लाना और नारियलकी जटासे दुतल्ले और तीनतल्लेका बरामदा साफ करना पड़ता था। एक दिन इसी तरहकी सफाई करते समय मैंने उल्लासकर को थोड़ी दूरपर

काम करते देखा। बातें करनेका हुकुम नहीं था, तो भी बातें करनेकी बड़ी इच्छा हुई। धीरे धीरे पैर बढ़ाते हुए उल्लासकरके पास पहुंचकर ज्यों ही मैंने उसे पुकारा, त्यों ही मेरी पीठपर बड़े जोरका घूंसा पड़ा। पीछेकी ओर मुंह फेरकर देखते ही गालपर चपत पड़ी। मैंने देखा, कि यमदूतोंके सगे भाई, पठान पहरेदार, मुहम्मदशाह इस प्रकार सरकारके हुक्मकी तामील करते हुए जेलकी शान्तिरक्षा कर रहे हैं।

उस बार इसी तरह कुछ दिन बिताकरमैंने तेल पेलनेसे पिण्ड छुड़ाया, पर जेलर छोड़नेवाला जीव नहीं था। कुछ ही दिन बाद उसने फिर मुझे कोल्हूमें जोतना चाहा। पर मैं भी मरनेको तैयार था। एक बार ही साफ टकासा जवाब देदिया, कि मैं तेल न पेलूंगा, जो करना हो, भले ही करलो। यह सुनते ही जेलर आग-बबूला हो गया। उसने मुझे कोठरीमें हथकड़ी बेड़ीसे जकड़कर बन्द करने और मांड पीनेके लिये देनेका (Denal diet) हुक्म जारी किया। अन्तमें जब शरीर बिलकुल ही टूट गया, तब फिर नारियल छीलनेका अधिकार मिला। पर नारियल छीलनेमें ही कुछ शान्ति थोड़ी ही थी? पहरेदारोंको खासकर पञ्जाबी और पठान मुसलमानोंको समझमें यह बात आगयी थी, कि हमें वे जहां तक दुःख पहुंचावेंगे, वहीं तक जेलके अधिकारियोंके प्रियपात्र हो सकेंगे। इसीसे वे हमें सदा

में डालनेकी चेष्टा करते रहते थे। छोटी छोटी बातोंके लिये भी कितनोंको विपद्में पड़ना पड़ता था। एक दिन अपनी कोठड़ीमें बैठा पैरोंमें बेड़ी पहने नारियलकी जटा निकाल रहा था। मारे गरमीके एड़ीसे चोटीतक पसीना छूट रहा था। नारियलकी जटा कूटनेवाली मूगरी उछल उछलकर मेरा ही सर तोड़ा चाहती थी। इसी समय मैंने बाहर एक पञ्जाबी मुसलमान पहरेदारको देखकर उससे नारियलकी जटा भिगोनेके लिये पानी मांगा। उसने दांत किटकिटाते हुए कहा,—"नहीं, यह नहीं हो सकता, सूखी ही कूटो।" मेरा मिजाज भी ठीक नहीं था, इसी लिये झट बोल उठा,—"पानी न दोगे, न सही, पर इतना दाँत क्यों किटकिटाते हो?" इसपर पहरेदारने ताव बदल कर कहा,—"यह क्या? गुस्ताखी करता है?" मैंने सोचा, कि इस समय दब जाना अच्छा न होगा, अतएव झट कह उठा,—"क्यों, क्या तुम कहींके नवाबज़ादे हो?" यह सुनते ही उसने खिड़कीके भीतरसे हाथ बढ़ाकर मेरी गरदन इस जोरसे खींची, कि मेरा सिर लोहेके छड़से टकरा गया। इसपर मुझे ऐसा गुस्सा चढ़ा, कि यदि वह भीतर होता, तो मैं मारे मूगरीके उसका भेजा बाहर निकाल देता। यों ही छोड़ देना तो ठीक नहीं था, पर करूं क्या? लाचार था। अन्तमें मैंने उसका हाथ पकड़कर इस जोरसे दांत गड़ाया, कि उसके हाथसे झरझर खून गिरने लगा। वह जेलरको हाथ दिखलाकर मेरे नाम नालिश

करने चला; लेकिन रास्तेमें हमारे एक बन्धु जो हिन्दू और जेलके छोटे अफसर (Petty Officer) थे, उसे समझा बुझाकर लौटा लाये। पहरेदारोंके साथ और भी दो एक बार इस तरहके झगड़े हुए थे; परन्तु यह साफ देखनेमें आता था कि जिससे वे हार जाते, उसके भले बन जाते थे। बेचारे कमजोर लोगोंपर सब जगह जुल्म होता था और वह पठानोंकी ओरसे ही होता था। पर पठानोंमें चाहे और हजारों अवगुण हों, किन्तु उनमें एक गुण मैंने अवश्य देखा। वह यह, कि जिसे वे एकबार मित्र बना लेते, उसकी सहायता अपने सर बला लेकर भी किया करते थे। उनमें बेरहमी कूट कूटकर भरी है, परन्तु उनके मनमें जैसी दृढ़ता है, व सी हमारे देशके आदमियोंमें नहीं पायी जाती। हड़तालके समय जेलर हमें दबानेके लिये पठान पहरेदारोंको हमारे पीछे लगा देते थे : पर वे बहुत समय तो हमारे मित्र ही बन जाते थे। जेलमें दलबन्दियोंका ठिकाना नहीं था। जो दल प्रबल होता, उसीको अपने मेलमें लाकर हम लोग अपनी रक्षा करनेकी चेष्टा करते थे।

कभी कभी जेलखानेमें हिन्दू मुसलमानोंका बड़ा जबरदस्त झगड़ा हो जाता था। मुसलमानोंमें अपने धर्मवालोंपर स्वभावतः ही बड़ा प्रेम होता है, इसी लिये वे लोग हरदम इस बातकी चेष्टा किया करते थे, कि जेलमें जितनी हुकूमतकी जगह हैं,

वे सब मुसलमानोंको ही मिलें। तरह तरहके प्रलोभन देकर वे हिन्दूको मुसलमान बनाये बिना भी नहीं छोड़ते थे। यह विश्वास प्रायः सभी मुल्लाओंको रहता है, कि किसी तरह किसी हिन्दूको मुसलमानके घरका खाना खिला, मूंछें मुड़वा और कलमा पढ़वाकर मुसलमान बना लिया जाये, तो अल्लाह उनके लिये बिहिश्तमें खूब आरामके सामान मुहैया कर देंगे! साथही कालेपानीके आर्त्त भक्तोंके साथ मुल्लाओंकी खूब पटती भी थी। इसी लिये हिन्दूको मुसलमान बनानेके सवाल पर दोनों धर्मोंके धुरन्धर लोग प्रायः लड़ पड़ते थे। अगर कोई हिन्दू, खास कर ब्राह्मणकी सन्तान कोल्हू पेलने जाता, तो पांच सात मुसलमान उसे तङ्ग करनेके लिये तरह तरहके षड्यन्त्र रचते और उसे लोभ दिखलाते, कि मुसलमान हो जाने पर वह किस तरह चैनसे दिन काटेगा। मुसलमानोंकी तरह आर्यसमाजी भी जेलमें प्रचारका कार्य करते हैं और धर्म-भ्रष्ट हिन्दूओंको आर्यसमाजमें शामिल करनेकी प्राण पणसे चेष्टा करते हैं। साधारण हिन्दुओंमें इस बातकी कोई परवा नहीं है। वे केवल छांटना जानते हैं, बाहरसे किसीको अपने दलमें मिला लेनेकी शक्ति उनमें नहीं है। इस दलबन्दीका और कुछ लाभ हो चाहे नहीं, पर हिन्दुओंकी चुटिया और मुसलमानोंकी दाढ़ी खूब बढ़ गयी थी। बंगालोकी छोटी जातियोंके जो लोग देशमें कभी चुटिया नहीं रखते, वे भी कालेपानीमें आकर डेढ़ हाथकी चुटिया रखा लेते

हैं और मुसलमान लोग सिर हिला-हिलाकर 'अली और हनुमानकी लड़ाई' 'शिव और मुहम्मदका झगड़ा' 'सोना भान बीबीका किस्सा' आदि तरह तरहकी विचित्र कहानियां सुना सुनाकर अपनी आकबत जतानेकी फिक्र किया करते थे। हम लोग बिना किसी प्रकारकी हिचकिचाहटके हिन्दू-मुसलमान दोनोंके हाथकी रसोई खा लेते हैं, यह देखकर पहले पहल तो मुसलमानोंका हमारी आकवत (?) बन जानेकी बात सोचकर आनन्द हुआ था और हिन्दुओंका जी छोटा हो गया था। अन्तमें हमारे न्यारे रंग ढंग देखकर उन लोगोंने यही निश्चय किया, कि हम न तो हिन्दू हैं न मुसलमान—खासे बंगाली हैं। फिर तो सभी राजनीतिक कैदियोंको लोग 'बंगाली' कहने लगे।

दुःख और साथ ही साथ लज्जाकी भी बात है, कि यह दलबन्दी केवल साधारण कैदियोंमें ही नहीं थी, राजनीतिक कैदियोंमें भी इसका अभाव न था। हमारी संख्या ज्यों ज्यों बढ़ने लगी त्यों त्यों दलबन्दी भी बढ़ती गयी। जिन लोगोंने टॉल्स्टाय (Tolstoy) की Ressirection नामक पुस्तक पढ़ी है, वे जानते हैं, कि उसमें विद्रोहियोंके मनस्तत्वका कैसा सुन्दर चित्र खींचा गया है। वह वर्णन कैसा सत्य है, यह मैं अपने दलवालोंको देखकर ही समझ गया। सचमुच साधारणतः विप्लवकारी अपनेको बहुत बड़ा समझने लगते हैं। उनमें अहङ्कार

और आत्म-विश्वासकी मात्रा कुछ बढ़ी हुई होती है, इसीसे वे कार्य करनेको भी अग्रसर होते हैं ; पर मेरा खयाल है, कि उनके चरित्रमें जितनी तीव्रता होती है, उतनी गम्भीरता नहीं होती। वे साधारणतः या कल्पना-प्रवीण और एक देशदर्शी होते हैं और उनमें अधिकांश चञ्चल प्रकृतिके हुआ करते हैं। राजनीतिक कैदियोंमें जहां कोई नया लड़का आता, कि मैं झट उससे यह पूछने लगता था, कि उसके पिता या माताके कुलमें कोई पागल हुआ था या नहीं। अधिकांश लोगोंके खानदानमें किसी न किसीके वायु-रोग ग्रस्त होनेका पता चलता था। सम्भव है, कि मेरी यह बात सुनकर मेरे पुराने मित्र मुझ पर नाराज हों, पर क्रोधके इस अपव्ययकी कोई ज़रूरत नहीं, क्योंकि मैं भी उन्हींके दलका आदमी हूं और मेरी दादी भी पगली थी।

विप्लव-पन्थियोंके चरित्रकी यह विशेषता जेलके बाहर काम-धन्धेमें फंसे रहनेके कारण दबी रहती है, पर जेलमें और किसी तरहकी उत्तेजना न होनेके कारण नाना प्रकारकी गुट्ट-बन्दियोंके रूपमें प्रकट होने लगती है। किस दलने अधिक काम किया है, किसने देह चुराई है, कौन नेता सच्चा और कौन झूठा है—इस तरहकी गवेषणाओंका कभी अन्त ही नहीं होता! प्रायः प्रत्येक दल अपनेको 'पहला' और 'सच्चा' साबित करनेके लिये एक दूसरेके विरुद्ध झूठा-सच्चा अभियोग उपस्थित किया करता

था। इस प्रतिष्ठा लाभकी चेष्टाके साथ-साथ प्रान्तीय भेद-भाव मिलकर मामलेको और भी विकट बना देता था। जातीय सम्मिलन और जातीय-एकताकी दुहाई देकर कितनी ही अद्भुत बातोंका प्रचार करनेकी चेष्टाकी जाती, इसका कोई ठिकाना नहीं। बीच बीचमें महाराष्ट्र नेता यह बात प्रमाणित करने लगते थे, कि चूंकि बङ्किमचन्द्रके "वन्देमातरम्" गानमें सप्तकोटि कण्ठोंका ही ज़िक्र है, तीस कोटि कण्ठोंका नहीं और बंगाली कवि "बङ्ग आमार जननी आमार" का ही राग अलापते हैं, इस लिये बंगालियोंका जातीयता बोध बहुत ही सङ्कीर्ण है। एक पंजाबी आर्यसमाजीको जब बङ्गालियोंकी बुराई करनेकी और कोई बात न मिली, तब उसने एक दिन कहा, कि राममोहन-रायने अङ्गरेजी सरकारको इस देशमें अंगरेजी शिक्षाका प्रचार करनेकी सलाह दी थी, इस लिये वे देशद्रोही और विश्वासघा-तक थे! इन सब युक्तियोंका जवाब पागलखानेमें ठूंस देनेके सिवा और कुछ भी न था। महाराष्ट्र नेताओंमें बंगालियोंके प्रति विद्वेषकी मात्रा कुछ बढ़ी हुई मालूम पड़ी। उनके मनका भाव यही था, कि यदि भारतवर्षमें एकता स्थापित करनी हो, तो मराठोंके ही नेतृत्वमें चलनेसे हो सकती है। हिन्दुस्थानी और पंजाबी लोग गंवार हैं, बंगाली कोरे बकवाद। मद्रासी कमज़ोर और डरपोक हैं—एक मात्र पेशवाओंके वंशधर ही आदमी कह-लाने लायक हैं—यही धुन उनके हर युक्ति तर्कसे निकलती थी।

इन्हीं सब विरोधोंके कारण बहुत दिनों तक हड़ताल करने पर भी कोई फल न निकला। अन्तमें जब इन्दुभूषणने जेलके कष्टोंसे ऊबकर आत्महत्या कर ली और उल्लासकर पागल हो गया, तब हम लोग आपसकी फूट भूल कर एक साथ काम करने लगे। नेता लोग अधिकांश आप फन्देमें न पड़ते हड़तालमें शामिल न होते थे—दूरही दूरसे औरोंको उत्साह और उपदेश देकर अपना कर्त्तव्य पालन करते थे पर बहुत बार हड़ताल विफल होनेपर भी सरकारको अन्तमें हम लोगोंसे समझौता कर लेना पड़ा।



ग्यारहवां परिच्छेद ।





म लोगोंकी हड़तालोंसे ऊबकर सरकारने हमारे साथ जो समझौता किया, उसकी मोटी-मोटी बातें ये हैं :—हमें चौदह सालतक कालेपानीकी जेलमें कैद रहना पड़ेगा। इसके बाद हम जेलके बाहर निकाल दिये जायेंगे और तब हमें कैदियोंकी तरह काम न करना पड़ेगा। जेल-खानेके भीतर भी हम लोग बाहरी कैदीकी तरह अपना-अपना खाना आप पका सकेंगे और बाहरी कैदीकी सी पोशाक पहन सकेंगे—अर्थात् जांघिया, टोपी और हथकटे कुर्त्तेकी जगह धोती और हाथवाला कुर्त्ता पहन सकेंगे तथा सिरपर चार हाथ लम्बे कपड़ेकी पगड़ी पहननेका भी हमें अधिकार होगा। और भी, यदि हम १० बरस तक अच्छी तरहसे रहें अर्थात् हड़ताल वगैरह न करें और जेलके अफसरोंसे न लड़ें, तो १० वर्षकी कैद भोग चुकनेके बाद सरकार हमारे साथ और भी रियायत करनेके सम्बन्धमें विचार करेगी। जांघियाकी जगह आठ हाथ की मोटे कपड़ेकी धोती या पगडी पहननेसे हमारे सुखकी मात्रा कितनी बढ़ गयी, सो तो मुझे मालूम नहीं ; पर

अपने हाथों रसोई पकानेका अधिकार पानेसे रोज रोज अरबीके पत्तेकी तरकारी खानेसे तो जान बच गयी! साथ ही कठिन परिश्रम करनेसे भी छुटकारा हुआ। वारीन्द्रको बेंतके कारखानेका निरीक्षक बनाया गया, हेमचन्द्र पुस्तकालयके अध्यक्ष बनाये गये और मुझे कोल्हूघरकी निरीक्षकता सौंपी गयी! सवेरे १० बजेसे १२ बजेके भीतर भीतर खाना पकाने और खा-पीकर तैयार हो जानेका हुक्म था; परन्तु इतने थोड़े समयके अन्दर सब काम कर लेना असम्भव जानकर हमलोग साधारण भण्डारेसे दालभात ले लेते थे—सिर्फ तरकारी अपनी पसन्दसे बना लिया करते थे। हेमचन्द्र रन्धन-विद्याके उस्ताद माने जाते थे। सच पूछिये, तो मांस, पुलाव आदि नवाबी खाने पकानेमें वे बड़े ही होशयार थे! हां, सीधीसादी तरकारी बनानेमें वे हमलोगोंसे विशेष विद्वान् नहीं थे। एक दिन एक सूरन (ज़मीकन्द) मिल गया। उसीकी शोरबेदार तरकारी खानेकी इच्छा हुई; पर कैसे बनाना होता है, यह तो हमलोगोंको मालूम ही नहीं था। इसके लिये जो बड़ी भारी कानफ़रेन्स बैठी, उसमें इसकी रन्धन-प्रणालीके सम्बन्धमें किसीका मन किसीसे नहीं मिलता था। वारीन्द्रने कहा,—"मेरी दादी 'हाटखोले' के दत्त-घरानेकी लड़की हैं, खूब अच्छे-अच्छे पकवान और भोजन बनाना जानती हैं, इस लिये मेरा ही कहना प्रामाणिक है।" हेमचन्द्रने कहा,—"मैं फ्रान्स जाकर फ्रान्सीसी खाना बनाना

सीख आया हूं, इसलिये मेरा ही मत ठीक है।" हमारे सभी स्वदेशी कामोंमें आजकल विलायती मुहर-छापका हा आदर अधिक होता है, इसलिये हमलोगोंने हेमचन्द्रकी बात सुनकर निश्चय किया, कि उन्हींकी सलाहसे तरकारी बननी चाहिये। मैं भारी-भरकम बनकर तरकारी बनाने बैठा और हेम-भैया पास ही बैठे हुए बुजुर्ग बनकर उपदेश देने लगे। कढ़ाईमें तेल डालकर जब हेमभैयाने प्याजका बघार देकर सूरन छौंकनेके लिये कहा, तब मुझे भी उनकी रन्धन-विद्याकी जानकारीके विषयमें संदेह हुआ। सूरनकी तरकारीमें प्याज़की बघार कैसी, भाई! यह तो देखता हूं, कि बेतरह फ्रान्सीसीपन है! पर कुछ कहनेकी जगह नहीं थी। इसी लिये चुपचाप रहा। जब तरकारी कड़ाहीसे निकाली गयी, तब तो वह बिलकुल पहचानमें ही नही आती थी। एकदम कोयलेकी तरह काला काला रंग प्याज़की भयङ्कर बदबू थी! खाते समय चारों तरफ़ हंसीका फौआरा चलने लगा। वारीन्द्रने कहा,—"हां, भैया! यह तो खासा फ्रान्सीसी Chef-de-cinsine होगया, इसमें शक नहीं। मेरी दादी भला कब ऐसी तरकारी बना सकती थी!" हेम भैया भी झेंप जानेवाले जीव नहीं थे। बोले,—"यही तो तुम लोगोंमें बड़ा भारी ऐब है। तुमलोग एकदम दादी-पन्थी हो। दादी जो कर गयी हैं, उसे तुम लोग बदलना नहीं चाहते।" सूरनकी तरकारी जिस दिन रन्धन-विद्याकी

बिशेष जानकारीके प्रभावसे कबाब बनवाया था, उसके कई दिन बाद शोरबादार तरकारी बनानेका प्रस्ताव हुआ ; किन्तु शोरबेमें कौन-कौनसे मसाले पड़ने चाहियें, इस विषयमें तरह-तरहके मत दिये जाने लगे। हेम भैयाने कहा, कि तरकारीमें एक औन्स कुनैन मिकचर डाल देनेसे खूब बढ़िया शोरबा तैयार हो जाता है। हमारे देशकी जो नयी-नवेली बहुएं बीस तरहकी चीजें साथ लेकर रसोई बनाने बैठती हैं, वे शोरबादार तरकारी बनाते समय इस नयी प्रणालीकी परीक्षा कर देखें, तो अच्छा हो। यदि बात सच हो, तो इस मलेरिया-पीड़ित देशमें वे एक ही साथ आहार और पथ्यका आविष्कार कर अमर हो जायेंगी—हमारे हेम भैयाका भी जयजयकार हो जायेगा।

हम लोग अपने लिये जेलसे ही तरकारी लिया करते थे ; पर वहांसे जियादातर आलू और अरबी ही मिलती थी। इसीसे हम लोग अकसर और-और तरकारियाँ बाज़ारसे मंगवाते थे। सरकारी नियमके अनुसार हमें बारह आने बेतनके हर महीने मिलते थे। हम लोग शरीरसे दुर्बल थे, इस लिये जेलके अधिकारी हमें फी आदमी बारह औन्सके हिसाबसे दूध देकर उसका आंशिक मूल्य आठ आने हर महीने काट लिया करते थे। रहे चार आने, सो इतने ही में हमें अपनी गृहस्थी चलानी पड़ती थी। कुछ दिन बाद जेलखानेमें ही एक प्रेस खोला गया,

जिसके तत्वावधानका भार वारीन्द्रको दिया गया और हेमचन्द्र जिल्द-बंधाई विभागके अध्यक्ष बनाये गये। उस समय सुपरिण्टेण्डेण्ट साहबने उन्हें ५) महीना देनेके लिये चीफ़-कमिश्नरको लिखा। ५) का नाम सुनते ही चीफ़-कमिश्नरकी तिल्ली चमक उठी—अरे बापरे ! कैदीको ५) महीना दिया जायेगा ? तब तो अंगरेज़ी सलतनत ही उलट जायेगी ! बहुत लिखा-पढ़ी होने पर एक रुपये महीनेका मंजूरी हुई ! खैर, भागे भूतकी लंगोटी ही भली !

क्रमशः हमारे रसोई घरके पास एक छोटासा पोदीनेका खेत तैयार हो गया। इसके बाद दो चार लाल मिर्चके पौधे, दस पाँच बैंगनके पौधे और एक कुम्हड़ेकी बेल भी दिखाई दी। यह सब शास्त्र विरुद्ध काररवाई देख, जेलर कभी कभी हमें डाँट डपट करनेको आते ; पर सुपरिण्टेण्डेण्टके हृदयके किसी कोनेमें हमारे लिये दया उपज गयी थी, इस लिये वे इन सब कामोंको देखकर भी नहीं देखते थे। जेलर जब बहुत आपत्ति करते, तब वे उत्तरमें इतना ही कहते,—"जब वे सब चुप चाप पड़े हुए हैं, तब उनके पीछे पड़ना ठीक नहीं।" इस दयाका कारण भी था। अधिकारियोंके लाख चेष्टा करने पर भी बीच बीचमें देशके अखबारोंमें वहांके अधिकारियोंकी कीर्त्ति-कथा छप ही जाती थी। पहले तो यह सब देखकर उन लोगोंका मिज़ाज गरम हो जाता

था ; पर अन्तमें ठोकरें खा-खाकर वे भी यह सीख गये थे, कि कैदियोंको भी बहुत सताना ठीक नहीं।

मिज़ाज नरम होनेका एक और बड़ा भारी कारण जर्मनीके साथ अंगरेजोंका युद्ध भी हो गया। लड़ाई छिड़नेके कुछ ही दिन बाद देखा गया, कि जेलके कर्त्ता-हर्त्ताओंके मुंह सूखकर सोंठ हो गये हैं। कैदियोंको सतानेकी वैसी प्रवृत्ति नहीं रह गयी। अस्ट्रियाके युवराजकी हत्यासे लेकर जर्मनीकी सेनाके पेरिस-नगरसे २० मीलकी दूरी पर पहुंच जानेकी खबर तक हमें जेलमें बैठेही बैठे मिल गयी थी। अन्तमें जब 'एमडेन' आकर मदरास पर गोला बरसा गया, यब तो कैदियोंसे यह सब हाल छिपाना मुश्किल हो गया। कैदी भी यह समझ गये, कि अंगरेजोंके वाणिज्य-व्यापारको खूब क्षति पहुंच रही है। पहले नारियल और सरसोंके तेलके सैकड़ों हज़ारों पीपे पोर्ट-ब्लेयरसे चालान होते थे, पर अब सारा माल गुदाममें ही पड़ा रहने लगा। जेलरका कोल्हू-घर बन्दसा हो गया। अन्तमें जब तरह तरहके प्रलोभन देकर कैदियोंसे भी लड़ाईके लिये रुपया (war-loan) मांगा जाने लगा, तब पोर्ट-ब्लेयरमें इस बातकी गरम खबर फैल गयी, कि अंगरेजोंका तो सफाया हो गया! जेलकी दल बन्दियां मिट गयीं और शत्रु मित्र सब मिलकर जर्मनीकी जय मनाने और उसकी जयके लिये माला फेरने लगे। सबका

इस बातका विश्वाससा हो गया था, कि जर्मनीके कैसरने हुक्म जारी किया है, कि सब कैदी छोड़ दिये जायेंगे। साहबोंके अरदली हमारे पास आ-आकर खबर देते, कि कल तो साहब अखबार पढ़ते पढ़ते रो पड़े थे, कल बिना खाये ही बिछावनमें मुंह लपेट कर सो रहे थे, इत्यादि इत्यादि। भविष्यद्वक्ताओंका ढेरसा लग गया। कोई बोला,—पीर साहबने सपना देखा है, कि अंगरेजोंकी नैया १९१४ के भीतर ही मंझधारमें डूब जायेगी।" किसीने कहा,—"यह बात तो कुरानमें साफ़ साफ़ लिखी हुई है।" सारांश यह, कि सवेरेसे शाम तक बस यही एक चर्चा चलती रहती।

अन्तमें जेलके अधिकारियोंको भी कैदियोंके जीका बात मालूम हो ही गयी, अङ्गरेज लोग जीत रहे हैं, यह जंचानेके लिये सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब हमें विलायतके 'टाइम्स' नामक समाचार पत्रका साप्ताहिक संस्करण पढ़नेको देते थे; पर क्रमशः 'टाइम्स' को खबरों परसे विश्वास उठता चला गया। 'टाइम्स' के लिखे अनुसार अङ्गरेजी और फ्रान्सीसी फौजें रोज जितने मीलके हिसाबसे आगे बढ़ती थीं, वह सच होने पर तो कुछ ही महीनोंके अन्दर इन दोनों फौजोंको जर्मनी पार करके पोलैण्डमें पहुंच जाना चाहिये था, पर हमने देखा, कि पोलैण्ड तो दूर किनार राइन-नदीके पास पहुंचनेकी भी कोई खबर न मिली।

साधारणतः कैदी लोग अङ्गरेजोंके पक्षमें कुछ कहनेसे जल उठते थे। किसीको इस विषयमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं था, कि अफसर लोग झूठी झूठी खबरें छापकर हम लोगोंको दम दे रहे हैं।

देशसे जो नये नये कैदी पहुंचते, वे ऐसी अद्भुत अद्भुत बातें सुनाते, कि हमारी चञ्चलता और भी बढ़ जाती। एक दलने आते ही हमें संवाद दिया, कि वे यह बात विश्वस्तसूत्रसे सुन चुके हैं, कि एमडेन पोर्टब्लेयरका जेलखाना तोड़कर सब कैदियोंको भगा ले गया है। हमलोगोंको वहां सशरीर मौजूद देखकर वे उस अफवाहको गलत माननेके लिये तैयार नहीं थे, क्यों कि उन्होंने एक बड़े ही भले आदमीसे यह खबर पायी थी। कानोंकी सुनीके आगे आँखों देखी बातका भला कैसे विश्वास किया जाये!

क्रमशः पठान और सिक्ख पलटनोंके बहुतसे जवान विद्रोहके अपराधमें दण्ड पाकर पोर्टब्लेयरमें आ पहुंचे। उनमेंसे कुछ लोग फ्रान्ससे और कुछ मेसोपटामियासे आये थे। पठानोंके मुंहसे अनवरबेगकी दैवी शक्तिके विषयमें जो सब अद्भुत चमत्कार हम लोगोंको सुनाये जाने लगे, उन्हें सुन सुनकर कैदियोंकी छाती आशासे दस हाथ ऊंची हो गयी। वे कहते

कि अनवरपाशा जब तोपके सामने खड़े हो जाते हैं, तब खुदाई कुदरतसे तोपका मुंह आपसे आप बन्द हो जाता है। और भी सुना, कि वे एक दिन पक्षिराज घोड़े (?) पर सवार होकर मुलतान आये और यह आशा दे गये हैं, कि शीघ्रही एक संसार व्यापी मुसलमान साम्राज्यकी प्रतिष्ठा करेंगे। जमनीके कैसर कलमा पढ़कर मुसलमानी मज़हब कुबूल कर चुके हैं! इन सब बातोंका प्रतिवाद कर कैदियोंका जी कौन दुखाये? यही सोच कर हम लोग चुप रह जाते। हां, जहां तक संभव हो, वहां तक सच्चा सच्चा हाल जाननेके लिये अखबारकी खोजमें हम बराबर लगे रहते। गदर पार्टीके सिखोंके यहां आने पर दङ्गा फसादके भयसे पहरा देनेके लिये देशी और विलायती पलटन यहां बुलायी गयी। विलायती पलटनमें बहुतेरे आयरिश थे। वे अंगरेजोंकी वैसी कुछ भलाई चाहते हों, यह बात भी नहीं थी। फिर तो अखबार मिलना कोई बड़ी बात नहीं थी। इसके सिवा देशसे जो नये नये राजनीतिक कैदी आते उनसे भी देशकी अवस्थाका पता चलता था। एमडेनके पकड़े जाने पर यह सुना गया, कि उस जहाजके आरोहियोंके पास जो सब कागज़ पत्र मिले थे, उनमें पोर्ट-ब्लेयरका नक्शा भी था। कहीं आगे चल कर यहां हमला न हो, शायद इसी लिये पोर्ट-ब्लेयरकी फ़ौजकी तादाद बढ़ा दी गयी और दो-चार तोपें भी मंगा ली गयी थीं।'

पोर्ट-ब्लेयरकी फौजी पुलिसमें पञ्जाबियोंकी ही संख्या अधिक थी। उनमें भी अधिकतर सिक्ख ही थे। कहीं गदर पार्टी वाले सिक्ख मिलिटरी पुलिससे मिलकर षड्यन्त्र न कर बैठें और दंगा फसाद न मचा दें, इस भयसे पोर्ट-ब्लेयरके अधिकारियोंके मन चञ्चलसे हो उठे थे। इसी लिये भीतरके सिक्खों पर उनका बड़ा कठोर व्यवहार होने लगा। एक तो अमेरिकासे लाये हुये सिक्खोंको रोटी और मांस खानेकी आदत थी, जेलके खानेसे उनकी तृप्ति ही नहीं होती थी। तिसपर सिरके लम्बे लम्बे बालोंको धोनेके लिये बेचारोंको साबुन या सज्जीखार भी नहीं मिलता था। अन्तमें जब उन पर तरह-तरहके अत्याचार होने शुरू हुए, तब उनमेंसे एक, जिसका नाम छत्रसिंह था, पागल हो उठा और सुपरिण्टेण्डेण्टको मारने दौड़ा। इसका नतीजा यह हुआ, कि बेचारेको दो सालके लिये कालपींजरेमें कैद होना पड़ा। फिर हड़ताल शुरू हुई, परन्तु जिन नेताओंने सिक्खोंको हड़ताल करनेके लिये उभाड़ा था, मौका पड़ने पर वे ही पीठ दिखा गये। पीछे फूट पड़ जानेके कारण हड़ताल मिट गयी। युद्ध बन्द होजाने पर हमारे भाग्यविधाता हमारे लिये कोई नयी व्यवस्था करते हैं या नहीं, यही देखनेके लिये हम लोग गरदन उठाये बैठे रहे!



बारहवां परिच्छेद ।



भी कभी राजनीतिक मतामतके सम्बन्धमें हम लोगोंसे सुपरिण्टेण्डेण्टको खूब बहसें होती थी। कहना व्यर्थ है, कि अङ्गरेजी सरकारकी महिमाका प्रचार करना ही उनका उद्देश था। स्त्रियों और सरकारी अफसरोंसे वाद-विवाद छिड़ने पर हार मान लेनाही भलमनसाहत है। पर यह बात जानते हुए भी हमलोग उन्हें कभी कभी दो-चार अप्रिय सत्य सुना देते थे। जहां जी की लगी बुझानेका और कोई उपाय नहीं रहता, वहां सिवा जीभ चलानेके और क्या किया जा सकता है।

उन दिनों रूसमें विप्लवका आरम्भ हो चुका था। एक दिन जेलरने मेरे पास आकर कहा,—"सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब इतनी इतनी देरतक तुम लोगोंसे तर्क-वितर्क किया करते हैं, इसका कोई कारण तुम्हारी समझमें आता है, कि नहीं?"

मैंने कहा,—"मैं क्या जानूं, साहब? मैं नहीं कह सकता, कि अपनी जातिके गुण गानेके सिवा उनका और कोई मतलब है या नहीं।"

जेलरने कहा,—"शायद तुम्हें यह मालूम होगा, कि यहांसे तुममेंसे प्रत्येक आदमीके बारेमें हर छठे महीने एक रिपोर्ट इण्डिया-गवर्नमेण्टके पास भेजी जाती है। तुम लोग सुपरिण्टे-ण्डेण्टसे जो कुछ कहते हो, उसे वे झट नोटकर लेते हैं और उसीके आधार पर रिपोर्ट तैयार किया करते हैं। चारों ओर जैसी गड़बड़ मची है, उससे अङ्गरेज यदि हारे, तब तो उनकी लुटिया डूबी ही समझो फिर तो तुम्हारे सब बखेड़े पाक हैं। और यदि वे जीत गये, तो आनन्दके प्रथम आवेगमें प्रसन्न होकर तुम्हें छोड़ भी दे सकते हैं। मैं आयरिश हूं, इसलिये अङ्गरेजी हुकूमत क्या चीज़ है, वह मैं अच्छी तरह जानता हूं। जेल-खानेमें दिलकी बात मुंहपर लानेसे कोई लाभ नहीं होता।"

मैंने सोचा, कि बात बहुत ठीक है। जेलखाना कोई लेक्चर झाड़नेकी जगह नहीं है। शास्त्रोंमें लिखा है, कि शत्रुके मुंहसे भी अच्छा उपदेश निकले, तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिये। इसी लिये मैंने उसी दिनसे बड़ी मुश्किलोंसे अपनी जीभको काबूमें रखना शुरू किया।

बीच-बीचमें सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब लड़ाईका जिक्र छेड़ दिया करते थे। वे हमें यही जंचाना चाहते, कि जर्मनीवाले बड़े ही शैतान हैं। हमलोग भी एक मुंहसे जर्मनोंकी शैतानीको मान लेते और उनसे कहते, कि मरनेपर सारे जर्मनीवाले नरकमें जायेंगे—उनके देवलोकमें अङ्गरेजोंके पास जगह पानेकी कोई सम्भावना नहीं !

*

अङ्गरेजोंके चरित्रकी यह बड़ी भारी सङ्कीर्णता है, कि वे किसी बातमें अपना छोड़कर पराया नहीं देखना चाहते। तेंतीस करोड़ भारतवासी सदा अङ्गरेजोंके आश्रयमें ही रहना चाहते हैं, यह बात विश्वास करनेके लिये अङ्गरेजोंके प्राण लालायित रहते हैं। उन्हें इस बातमें जरा भी सन्देह नहीं है, कि भारतमें अङ्गरेजोंका जो शासन-यन्त्र चलता है, वह आदर्श-शासनके ही समान है।

परन्तु सुपरिण्टेण्डेण्ट साहबको शायद अन्त तक यह विश्वास नहीं रहा। युद्धके समय तो बेचारेने प्राणपणसे बड़ी चेष्टा की—कैदियोंका खर्च घटा कर सरकारी खज़ानेमें बहुतसी रकम जमा करायी ; पर लड़ाई बन्द होनेपर जब उन्होंने अपनी एकमात्र शिशु कन्याको बिलायत पहुंचा आनेके लिये छः महीनेकी छुट्टी मांगी, तब कोरासा जवाब मिल गया, कि अभी छुट्टी

नहीं मिल सकती। जब दरख्वास्त पर-दरख्वास्त भेजते भेजते वे हैरान होगये और फिर कोई उत्तर न मिला, तब वे बड़बड़ाने लगे—"All Governments are bad, I am an anarchist" (सभी सरकारें बुरी होती हैं, इसलिये मैं तो अब राज-विद्रोही हो जाऊंगा। अन्तमें वे कुढ़कर इस्तीफा देने लगे, बोले,—"The Gods of Simla are incorrigible." (शिमलाके देवतागण ऐसे बुरे हैं, कि कभी सुधर ही नहीं सकते।) कुछ दिन पहले मान्टेगू साहबके रिफार्म-बिलका खरीता निकला और उसमें इण्डिया-गवर्नमेण्टको कर्त्ता-धर्त्ता बना देनेका प्रस्ताव किया गया, तब इन्हीं सुपरिण्टेण्डेण्ट साहबने बातोंही-बातोंमें कहा था,—"इसमें कुछ बुराई नहीं। The Government of India are sensible people. (भारत सरकार बड़ी ही होशियार है)" सच है—"जाके पाये न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।"

खैर—राम राम करते लड़ाई बन्द हो गयी। युद्धके पहले जब छूटनेकी आशा हमलोगोंने एकबारगी छोड़ दी थी और मौतकी घड़ियां गिनते हुए बैठे थे, तब वे दुःखके दिन भी किसी किसी तरह करते चले जाते थे। पर लड़ाई बन्द हो जानेपर फिर कैदियोंके छोड़े जानेकी बात उठी। तबतो आशा और आशङ्कामें पड़े पड़े दिन कटने मुश्किल हो गये। एक दिन

खबर आयी, कि समस्त जीवन कालेपानीको सजा पाये हुए जो सब राजनीतिक अपराधी पिनलकोडको ३०२ धाराके अनुसार अपराधी नहीं हैं, उन्होंने यदि जेलखानेमें सात वर्ष बिता दिये होंगे, तो उन्हें छोड़ दिया जायेगा। हमारे तो सात की जगह दस वर्ष कट गये थे, इसीसे जीमें कुछ आशा हुई। कुछ दिन बाद सुना, कि, जिन सब कैदियोंको छोड़ देनेकी सिफारिश भारत-सरकारसे की गयी है, उनमें हमारे भी नाम हैं। अब यदि बंगालकी सरकार इसे मंजूर कर ले, तो हम हंसते-खेलते घर लौट जा सकेंगे।

अबतक जन्मभरके लिये कालेपानीकी सजा पाया हुआ कोई राजनीतिक अपराधी पोर्टब्लेयरसे जीता न लौटा था। १८५८ में सिपाहीविद्रोहके बाद जो लोग यहां आये थे, वे सब एक-एक करके मर गये थे। थिबरके साथ जो युद्ध हुआ था, उसमें पकड़े हुए जो सब ब्रह्मदेशीय कैदी यहां आये थे, उनमें भी किसीको छुटकारा न मिला। आज हमारे लिये भारत-सरकारके इतिहासमें नया अध्याय शुरू होगा, इस बातपर सहसा विश्वास करनेको जी नहीं चाहता था। पर बिना विश्वास किये रहते कैसे? प्राण तड़प-तड़पकर निकल न जाते? क्रमशः जर्मनोंके साथ सुलह हुई—इङ्गलैण्डमें विजयका उत्सव भी मनाया जा चुका। पर यह क्या? कैदी तो छोड़े ही न

गये! युद्ध बन्द होनेके बादसे दिन गिने जा रहे थे। दिन गिनते गिनते सप्ताह, सप्ताह गिनते गिनते मास और मास गिनते-गिनते वर्ष लग गया, पर बिल्लीके भाग्यसे झींका न टूटा! परन्तु अखबारोंमें पढ़ा, कि अकतूबर महीनेमें भारतवर्षमें विजयका उत्सव मनाया जायेगा, इस लिये मनके एक कोनेमें थोड़ी बहुत आशा अटकी रह गयी।

जब भारतवर्षमें भी विजयका उत्सव मनाया जा चुका, तब जी छटपटाने लगा! रह-रहकर यही मालूम होता था, कि अब खबर आया ही चाहती है! अन्तमें एक दिन भारत-सरकारके यहांसे संवाद आ पहुंचा। सुपरिण्टेण्डेण्टने हमें अपने आफ़िसमें बुला कर कहा,—"सरकार बहादुरने दया करके तुम लोगोंको सालमें एक महीनेकी माफ़ी दे दी है।" बम भोला-नाथ! इतने दिनोंकी आशा एकही फूंकमें उड़ गयी!

अब मालूम हो गया, कि ज़िन्दगीके बाकी दिन पोर्ट-ब्लेयरमें बितानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। जब यही बात है, तब फिर भूतकी बेगार क्यों करनी? हमने चीफ-कमिश्नरके पास दरखास्त भेजी, कि सरकारी हुक्मके मुताबिक माफ़ीका एक महीना हर सालके हिसाबसे जोड़कर १४ साल पूरे हो गये, अब सरकारकी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार हमें जेलके कामसे छुटका-

रा मिल जाना चाहिये, पर यह दरख्वास्त चीफ़ कमिश्नरके आफिसमें कहां दबी पची रह गयी, सो मालूम नहीं, क्योंकि उसका कोई उत्तर ही न मिला।

इसी समय जेल कमेटी यहां आने वाली थी। मैंने सोचा, कि अब जो कुछ कहना होगा, उसी कमेटीके सामने कह कर दिलका बुखार निकालूंगा और उसके बाद ही काम धन्धा छोड़ बैठूंगा। परन्तु 'जगके रूठेसे क्या हुआ, जब राम है रखवारो।' जेल कमेटीके चले जाने पर कुछ ही दिनों बाद एक दिन सवेरे सवेरे सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब हमारे पास आकर बोले,—"बंगाल सरकारने तुम लोगोंको अलीपुर जेलमें बुला भेजा है, इस लिये तुम यहांसे छुटकारा पा जाओगे।"

थोड़े ही दिनोंमें गवर्नमेण्टकी मति गति कैसे बदल गयी, उस रहस्यका भांडाफोड़ करनेका कौतुहल मनका मनही में रह गया। कोई तो ज़मीनमें लम्बा होकर पड़ गया और मारे खुशीके चिल्लाने लगा। कोई हाथ पैर पटकने लगा और किसीने गाना आरम्भ कर दिया। एक विज्ञ बन्धुने सबको शान्त करनेके लिये कहा,—"भाइयो! जरा स्थिर हो। इस घरका कोई ठिकाना नहीं। यहां फलाहार करनेका बुलावा दिया तो जाता है, पर खाते खाते आफ़त आ जानेका डर रहता है—खा-पीकर हाथ

मुंह धोनेकी नौबत भी आयेगी, कि नहीं, इसमें भी सन्देह ही रहता है। कभी कभी मंझधारमें ही जहाज़ डुबो दिया जाता है ।"

जहाज़ पर सवार होनेके सिर्फ दो दिन बाकी हैं। रातको नींद नहीं आती, खानेको जी नहीं चाहता। कल्पनाके सैकड़ों चित्र आँखोंके सामने नाचा करते हैं। बहुत दिनोंके भूले हुए मुखड़े आज फिर याद आ रहे हैं। जिनके साथ जन्म भरके लिये नाता छूट गया था, वे स्नेहके सौ-सौ बन्धनोंसे फिर बांधनेको तैयार हो गये।

दो दिन बीते। २६ आदमियोंका एक झुण्ड जेलसे बाहर निकला। उस समय भी किसी किसीके पैरोंमें बेड़ी पड़ी थी। जेलके बाहर आते ही सिक्खोंने "श्रीवाह गुरुजी की फ़तेह" की आवाज़से आकाश पाताल कंपा दिये। इसके बाद गाना आरम्भ हुआः—

"धन्य धन्य पिता दशमेश गुरु,
जिन चिड़ियों से बाज़ तुड़ाये।"

(हे पिता ! हे दशम गुरु ! तुम धन्य हो, जो तुमने चिड़ियोंसे बाज़का शिकार करा डाला !)

आज फिर चिड़ियोंके बाज़का शिकार करनेके दिन आये, इसी लिये इस सङ्गीतके ताल पर हमारे प्राण सिहिर उठे! मैंने मनही मन कहा,—"हे भारतके भावी गुरो! हे भगवान्‌के मूर्त्तिमान प्रकाश! समुद्र पारसे अपने दीन भक्तोंका प्रणाम स्वीकार करना!"

इसके बाद जहाज़ पर सवार होकर मैंने पोर्टब्लेयरको अन्तिम बार देख लिया। Words worth की यह कविता रह रहकर याद आने लगी—"What man has made of man" (आदमीने आदमीको कैसा बना रखा है!)

जहाज़ पर तो तीनही दिनोंसे चढ़े हैं; पर मन बहुत पहलेसे दौड़ा हुआ चल पड़ा है। यह सागरद्वीपमें चिराग़ जल रहे हैं, यह रूपनारायणका मुहाना है! आजही खिदिरपुर घाटमें जहाज़ आ पहुंचेगा।

अरे, तो क्या सचमुच जहाज़ डूबा नहीं? यह लो, हम लोग तो सचमुच घाटपर आ पहुंचे। पुलिसवाले हमें अपने साथ साथ अलीपुरजेलमें ले चले।

हम फिर अलीपुर जेलमें आये, पर अब वह चेहरे नहीं रहे। हमारे शुभागमनका संवाद सुपरिण्टेण्डेण्ट साहबके पास पहुं-

था। हमारे पास जो कुछ सरोसामान था, उसको पुलिस पहरेदारोंने आकर जाँच-पूछ लिया। वैसा कुछ सामान भी तो विशेष नहीं था। पोर्टब्लेयरसे आते समय मैं सब किताबें वगैरह नये-नये लड़कोंको दे आया था। सोचा था, कि देशमें लौटने पर माता सरस्वतीसे कोई सरोकार न रखूंगा—चुपचाप खाऊं और पड़ा रहूंगा !

घण्टेभरके भीतर ही सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब आ पहुंचे। उस दिन शनिवार था। हमने सोचा था, कि आज और कल जेलमें ही रहना पड़ेगा, किन्तु कुछ ही क्षण बाद सुपरिण्टे-ण्डेण्टने आते ही पूछा,—"क्या तुम लोग आज ही बाहर जाना चाहते हो? क्या तुम लोगोंको कलकत्तेमें ठहरनेकी जगह मिलेगी?" जेलसे बाहर होनेका नाम सुनते ही दिल बल्लियों उछल पड़ा। मैं झट बोल उठा,—"बहुतसी जगह हैं।" जीमें सोचा,—"तुम छोड़ तो दो, हमें जगह न मिलेगी, तो रास्तेमें सो रहेंगे!"

उस रातको हेमचन्द्र और वारीन्द्रके साथ-साथ मैं भी छोड़ दिया गया। पर जायें कहां? श्रीयुत सी० आर० दासके मकान पर जाने पर मालूम हुआ, कि वे यहां नहीं हैं। लाचार,

वहांसे लौटकर हम लाग हेमचन्द्रके मित्र, हाईकोर्टके वकील श्रीयुत सातकौड़ीपतिरायके यहां अतिथि हुए। हेमचन्द्र और वारीन्द्र तो उस रातको वहीं रह गये ; पर मैंने चन्दननगर अपने घर चला जाना चाहा, सोचा, कि १०॥ बजे हवड़े पहुंचकर गाड़ीपर सवार हूंगा।

पर घरसे बाहर होते ही देखा, कि मैं तो कलकत्तेके सब राह-घाट भूल गया हूं। घूमता घामता हवड़े पहुंचा, तो देखा, कि गाड़ी छूट गयी है। श्यामबाज़ारमें मेरी ससुराल है। सोचा, कि वहीं चलकर रात बिता दूं। पर श्यामबाजार पहुंचते-पहुंचते रातके १२ बज गये। घरका दरवाजा बन्द था। दो-चार बार सांकल खड़खड़ायी, पर जब कोई आहट आवाज न मिली, तब सोचा, कि चलो, कुछ परवा नहीं, आजकी रात कलकत्तेकी सड़कों पर घूम-फिरकर ही बिता दूंगा। दिलके अन्दर एक नयी तरहका आनन्द लहरें मारने लगा। आज बारह वर्ष बाद खुले रास्तेमें घूमने पाया। संगमें न जेवर है, न पेटी अफसर न कोई वार्डर! अतीतका बन्धन छूट गया है—और अभीतक कोई नया बन्धन दिखाई नहीं दिया है। आज सचमुच मैं संसारमें अकेला हूं, पर इस अकेलेपनके साथ किसी प्रकारके बिषादकी कालिमा मिली हुई नहीं है, उलटे एक प्रकारका शान्त आनन्द इसके ताल पर नाच रहा है!

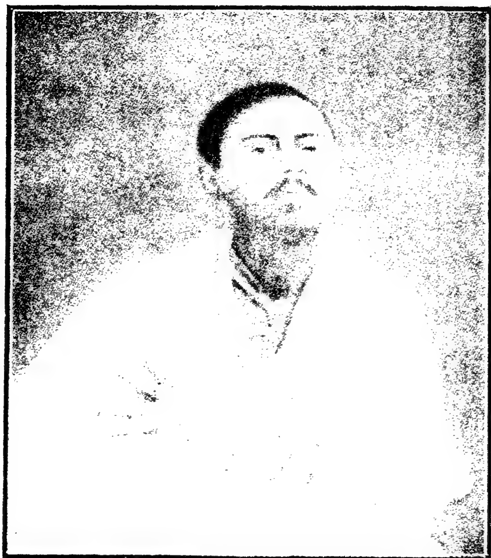
श्यामबाजारसे मैं सरकुलर रोडके रास्तेसे स्यालदह स्टेशनकी ओर चला। बारह सालसे जूते पहननेका अभ्यास छूट गया था, इसीसे आज नया जोड़ा पहनते ही पैर जगह-जगहसे छिल गये। लाचार जूतोंको खोलकर उसकी पोटली बनायी और कांखतले दबाकर चल पड़ा। बगलमें पोटली देखकर एक पहरेवाला मुझे पकड़कर पूछने लगा, कि तुम कहांसे आ रहे हो, कहां जारहे हो? इत्यादि। एकबार जीमें आया, कि सच-सच कह दूं, कि मैं कालेपानीका लौटा हुआ असामी हूं, इससे और कुछ हो चाहे नहीं, थानेमें थोड़ी देर लेट लगानेका तो मौका मिल ही जायेगा। इसके बाद ही सोचा, कि नहीं, अब सत्य-निष्ठा पर इतना अनुराग दिखाना ठीक नहीं। एकबार सच बोलकर तो बारह वर्षतक कालेपानीका दुःख उठाया! यही सब सोचकर बोला,—"मैं कालीघाटसे आ रहा हूं और स्यालदह जाऊंगा।" कान्स्टेब्लने मेरी बगलवाली पोटलीको परीक्षा कर बड़ी देरतक मेरा मुंह निहारनेके बाद कहा,—"तुम क्या उड़िया है?" मैंने बड़ी मुश्किलोंसे अपनी हंसी रोककर कहा,—"हां"! तब उसने जानेका हुक्म दिया और मैं उसे लम्बा सलाम कर चल पड़ा। रातके एक बजे गाड़ीपर सवार हो जब मैं श्यामनगर स्टेशनपर पहुंचा, तब दो बज गये थे। नाव पर सवार हो तीन बजते-बजते गङ्गा पार कर अपने गांवके घाट पर पहुंचा। राह-घाट निर्जन हो रहे थे। राहमें जहां-

तहां किरासिन तेलके लम्प टिमटिमा रहे थे। घरके पास पहुंच कर मैंने देखा, कि उसका रूप एक बारगी बदल गया है। खिड़की खड़खड़ाकर मैंने भाइयोंके नाम ले ले कर पुकारना शुरू किया। अन्तमें एक खिड़की खुली और भीतरसे हर्ष तथा उद्वेगसे चंचल एक सुपरिचित बामा-कण्ठने पूछा,—"तुम कौन हो ?" साथ-ही-साथ और मांने भी ठीक यही प्रश्न किया। जिसकी आशा सबने त्याग दी थी, वह फिर लौटा आया है, इस बातका विश्वास करनेका किसीको साहस नहीं होता था !

सारे घरमें हलचलसी मच गयी। तमाम लड़के अपनी आंखोंको मलते-मलते मेरे चारों ओर खड़े हो गये। एक छोटासा लड़का कुछ दूर पर खड़ा भौंचकसा होकर मेरा मुंह देख रहा था। मेरे भतीजेने मुझे उसका परिचय देते हुए कहा,—"यही आपका लड़का है।" जिसे मैं डेड़ वर्षका छोड़ गया था, वह आज तेरह बरसका है !

मैं फिर नये सिरेसे संसारमें प्रविष्ठ हुआ। हे भवसागरके खिवैया ! अब देखा चाहिये, तुम किस घाट उतारते हो !





श्रीउल्लासकर दत्त ।
(गिरिफ्तार होते समय ।)



श्रीहेमचन्द्र दास ।
(गिरिफ्तार होनेसे पहले ।)

परिशिष्ट ।

असामियोंके बयान ।

(अलिपुर बमकेसके प्रधान अभियुक्तोंका बयान, जो उन्होंने मजिस्ट्रेटके सामने दिया ।)

श्रीयुत वारीन्द्रकुमार घोष ।

वारीन्द्रसे मजिस्ट्रेटने पूछा—क्या तुम मेरे सामने कुछ कहना चाहते हो ?

वा०—हां, मैं आपके यहां जो बयान करूंगा वह अवश्य ही मेरे विरुद्ध प्रमाण होगा । मैं राजी खुशी यह बयान करता हूं । मुझपर किसी तरहका दबाव नहीं डाला गया है ।

मजि०—क्या तुम कहोगे कि मेरे सामने क्या बयान करना चाहते हो ?

वा०—मैं पहले पुलिस कमिश्नरके सामने एक बयान कर चुका हूं । जो कुछ आपको जानना है पूछते जाइये ।

म०—क्या तुमको मेरे सामने बयान करनेमें कोई उजर है ?

वा०—नहीं ।

आगे मजिस्ट्रेटके सवालोंके अनुसार वारीन्द्रने निम्न लिखित

बयान दिया—देवघर स्कूलसे इन्ट्रेंस पास कर मैंने अपने भाई मनमोहन घोषके साथ ढाकेमें जाकर एफ० ए० तक पढ़ा। आगे पढ़ना छोड़कर बङ्गालके प्रायः सब जिलोंकी सैर की। तब इस कामसे थक कर मैं बड़ौदा गया। वहां एक साल तक रहकर राजनीतिक काम करनेके ख्यालसे मैं बङ्गाल लौट आया। मैंने एक धर्म सम्बन्धी शाला खोलनेका सङ्कल्प किया। उस समय स्वदेशी और बायकाटका आन्दोलन आरम्भ हो चुका था। उन कार्य्यों को हमने अपने केन्द्रमें करना आरम्भ किया और अपनी मण्डलीको उस काममें अपना मातहत बनाना चाहा। क्रमशः नये २ आदमी हमारी शिक्षाके अधीन आने लगे और जो मण्डली पकड़ी गई है, उसके लोगोंको संग्रह करना मैंने आरम्भ किया। मैंने अपने मित्र अविनाश और भूपेन्द्रनाथदत्तसे मिल कर "युगान्तर" पत्र जारी किया।

हमने डेढ़ वर्ष तक उसको चलाया। आगे उसके वर्त्त-मान चलाने वालोंके हाथमें अर्पण किया। पत्रका काम छोड़ने पर मैंने मनुष्य संग्रह पर अधिक ध्यान दिया। डेढ़ वर्षमें मैंने १४-१५ आदमी संग्रह किये और उनको लेकर १६०७ ईस्वीके आरम्भसे काम शुरू किया। ये लड़के हमसे धर्म और राजनीतिकी शिक्षा पाते थे।

अस्त्रोंका प्रबन्ध।

मैंने कुल ११ तमञ्चे संग्रह किये। नौजवान लोग हमारे

काममें भरती होनेके लिये समय समय पर आया करते थे। उन्हींकी तरह उल्लासकरदत्त भी इस वर्षके आरम्भमें आया। उसने हमारे कारखानेमें अपना गुण दिखाना चाहा। वह अपने घर अपने बापके न जाननेमें तेजाब आदिका कुछ छोटासा सामान रखता था। उसके सहारे हम मानिकतल्लेके बाग वाले मकानमें बम आदि बनाने लगे। उसके बाद ही हमारा और एक दोस्त हेमचन्द्रदास हमसे मिला। वह मेदिनोपुर कास्त-जोई ग्राम निवासी है। शायद वह अपनी जायदादका कुछ अंश बेच कर उस पूंजीसे बम आदि बनानेकी विद्या सीखनेके लिये १९०७ ई० के बीचमें पेरिस गया था। तीन मास हुए होंगे, वह लौट आया है। वह ३८-४ नम्बर राजा नवकृष्ण स्ट्रीटमें और १५ गोपीमोहन वसु लेनमें बम आदि बनाया करता था।

छोटे लाट अचानक बचे।

बङ्गालके दो टुकड़े होने पर और खास कर जब धूम धामसे अखबारोंकी गिरिफ्तारी होने लगी, तबसे हम बम आदिसे काम लेनेकी बात सोचने लगे। जहां कहीं हम रुपये मांगने जाते थे, हमे सलाह मिलती थी कि बम आदि बनाओ। लोग कहते थे कि हमारी जाति पर सखती की गई है। उसका बदला लेनेका प्रबन्ध करो। हमें अनुभव हुआ कि यही हमारी जातिकी निष्कपट कामना है और हम प्रबन्धमें लगे।

हमारे साथ काम करने वालोंमें से कुछ लोग स्वेच्छापूर्वक काम करनेको आ गये। उनको हमने अपनेमें मिला लिया। बमसे काम लेनेका हमारा प्रथम उद्योग चन्दननगर स्टेशन पर हुआ। उस समय वहांसे होकर छोटे लाट फ्रेजर साहब रांची जा रहे थे। उल्लासकरदत्त चन्दननगर पहुंचा। उसके साथ एक छोटासा डिनामाइट बम, आग भभकानेका तार और आग भभकाने वाला डिनोमेटर यन्त्र था। लाट साहबकी गाड़ी जानेसे कुछ ही पहले उसने लाईन पर वह सब चीजें आजमानी चाहीं, किन्तु काम शुरू करने पर लोग उधर आ पड़े। हड़बड़ीमें उसने शुरू किया तो सही, परन्तु ठीक जगह पर चीजोंको जमा नहीं सका और चलते समय दो तीन कारतूस भी वहां वह गिरा आया। सो जब आवाज हुई तो उसका फल नहीं होने पाया।

मजिस्ट्रेटने पूछा कि तुम इन बातोंको कैसे जानते हो? जबाव मिला कि मेरे जाननेका कारण यह है कि मैंने ही उसको भेजा था। यह सब काम मैं उल्लास और उपेन्द्रनाथ बनर्जी—हम तीनों सलाह करके करते थे। वहां पर बाधा पड़नेकी बातें भी उल्लासने मुझसे कही थी। मैं भी और दो आदमी बोगड़ाके प्रफुल्लचन्द्र चाकी और शान्तिपुरके विभूतिभूषण सरकार उसी साथ उसी कामके लिये गया था। हम चन्दननगर स्टेशनसे मील भर दूर पर इन्तजारी करते थे। हमने सोचा था कि लाट

साहब इधरसे या बङ्गाल नागपुर रेलवेसे लौट सकते हैं। किन्तु जब कि वह इधरसे ही गये तो उनका इधरसे ही लौटना सम्भव है। हमने चन्दननगर और मानकुंडू स्टेशनोंके बीचमें बम जमाया था, किन्तु जब वह उधरसे नहीं आये तब हमने उसे उठा लिया। हमने उनके उधरसे आनेकी बात स्टेशन-से पूछ कर जानी थी।

छोटे लाट पर तीसरी कोशिश।

छोटे लाटको मारनेकी कोशिश तीसरी वार करनेमें मैं प्रफु-ल्ल और विभूति सवेरेके समय खड्गपुर जाकर उतरे।

सन्ध्यासे कुछ पहले एक ट्रेन पर हम नारायणगढ़ गये। पहले एक पक्की सड़क पर थे पीछे अन्धेरा होने पर रेलवे लाइन पर जाकर वहां ९ बजे रात तक बैठे रहे। घण्टे भरके अन्दर हमने नारायणगढ़से एक मील उत्तर खड्गपुरकी तरफ बम जमा दिया था। यह सब बातें इतने खुलासेसे इस लिये कहता हूं कि निरपराधियोंको सजा मिल चुकी है। जो बम हमने जमाया वह लोहेके एक मोटे बर्तनमें तीन सेर डिनामाइटसे बनाया गया था। उस बर्तनके ऊपर एक ढपनी थी और उसके बीचमें एक गढ़ा था। उसमें आग पहुंचानेका तार अवश्य ही था और पिक-रिक तेजाबसे मिला हुआ मसाला भी कागजकी एक नलीमें रखा गया था। कहीं उसका मुंह दबने न पावे इस लिये हमने उसके

मुंह पर शीशीका नल लगा दिया था। बम लगाते समय शीशी के नलको बहुत बड़ा समझ कर उसका एक हिस्सा काट कर वहीं छोड़ दिया था। हमारे साथ मोमबत्ती जलानेकी एक चोर लालटेन थी। हमारे साथ कागजमें लपेटी हुई बहुतसी चीजें थी। 'इङ्गलिसमैन' और 'बन्देमातरम्' पत्रकी भी एक एक प्रति थीं। ये चोजें भी वहीं पड़ी रह गई थीं। पिकरिक तेजाब भी कागजमें लपेटी हुई चीजोंमें था। दफतीका एक बक्स भी था, जिसमें रूईसे तोपा हुआ आग भभकाने वाला तार था। वह रूई भी वहां छूट गई थी। हमने एक झाड़ीके पास लाइनके नीचे बैठ कर मिठाई खाई थी। पत्तल और मिठाईका कुछ अंश वहां रह गया था। बम जमानेके बाद ११ और १२ बजे रात के बीचमें मैं अकेला पैदल नारायणगढ़ चला गया। और रातको आखिरी मुसाफरी गाड़ीमें बैठकर सीधे कलकत्ते चला आया। उन दोनों लड़कोंने वहां रह कर छोटे लाटकी स्पेशल ट्रेन आने पर बम भभकाने वाले तारको लाइन पर रख दिया। जब आवा-ज हुई तब दोनों लड़के वहांसे डेढ़ मीलके फासले पर थे। सो आप लिख लीजिए कि इस काममें न तो किसी कुली और न किसी दूसरेसे हमने किसी तरहकी मदद ली थी।

चन्दननगर के मेयर।

इससे आगेका प्रयत्न चन्दननगरके मेयर पर बम फेंकना

था। जसोरका इन्दूभूषण राय श्रीरामपुरका नरेन्द्रनाथ गोस्वामी और मैं हम तीनों एक साथ चन्दननगर गये थे। सन्ध्याके दीपक जलते समय हम मानकुण्डु स्टेशन पर उतरे और सीधे चन्दननगर स्ट्रैण्डकी ओर चले गये। १० बजे रात तक वहां रहने पर भी मेयर देख नहीं पड़ा। सो हम लौटे, और एक वृक्षके नीचे रात काटी गई। इन्द्र और नरेन्द्र श्रीरामपुरमें नरेन्द्रके मकान पर गये और दूसरे दिन सबेरे कलकत्ते पहुंचे। उस दिन सन्ध्याको फिर हम तीनों चन्दननगर गये तीनोंकी मुलाकात स्ट्रण्ड पर हुई। इन्द्र ने मेयर पर बम फेंका। हम वहांसे तेलिनीपाड़ा गये और एक नाव पर गङ्गाजीको पारकर उसी रात कलकत्ते पहुंचे। बमने ठीक काम नहीं दिया क्यों कि बाजारसे जो पिकरिक तेजाब लिया गया था, वह पीछे मालूम हुआ कि अच्छा न था।

आखिरी कोशिश।

अब सिर्फ और एकबारदात है, वही आखिरी है। प्रफुल्ल-चन्द्र चाकीके बम लेकर मि० किङ्गस्फोर्डको मारने जानेके लिये जिद करने पर हेमचन्द्र और उल्लासकर दत्तने १५ नं० गोपीमोहन लेनमें एक बम बनाया। किङ्गस्फोर्डने देशहितैषी लोगोंके विरुद्ध मुकद्दमोंका फैसला किया था इसीसे उसे मारने-की सलाह हुई। बमको पकड़नेके लिये उसमें लकड़ीका एक

इसका भी बनाया गया था। मैंने और उपेन्द्रनाथने प्रफुल्लको वह बम लेजानेके लिये कहा। हेमचन्द्रने मेदिनीपुरके खुदी राम बोसको साथ भेजनेकी सिफारिश की, वह भी जाने दिया गया। हमने उनको दो तमञ्चे दिये उन्होंने कहा था कि अगर पकड़े जायंगे तो उनसे आत्महत्या कर लेंगे। खुदी-राम बोसको बागीचे या गोपीमोहन बोस लेनके मकानकी बात मालूम नहीं थी। हम बाहरी लोगोंका विश्वास नहीं करते थे।

मैं प्रफुल्लको ३२ मुरली पूकुरके बागसे १५ गोपीमोहन बोस लेनमें ले गया वहां हमने एक बैगमें बम और तमञ्चे बन्द किये।

मजिस्ट्रेटने पूछा—तुम्हें ये तमञ्चे कहांसे मिले? उत्तर मिला—मैंने कई जगहोंसे संग्रह किये थे।

म०—क्या तुम बताना चाहते हो?

बा०—नहीं मैं वादा कर चुका हूं कि इनके पानेका वसीला किसीसे बताया नहीं जायेगा। मैंने प्रफुल्लको हेमके मकान पर ले जाकर खुदीरामके साथ कर दिया।

म०— वहां और कौन कौन थे?

बा०—क्या सबका नाम बताना होगा?

सुनिये ये लोग थे—शिशिरकुमार घोष, नलिनीकान्त गुप्त, हेमेन्द्रनाथ घोष, नरेन्द्रनाथ बख्शी, पूर्णचन्द्र सेन, रेवतीभूषण सरकार, शचीन्द्रकुमार सेन, विजयकुमार नाग, कुञ्जलाल शाह,

उल्लासकरदत्त, इन्दूभूषण राय, पूर्णचन्द्र मल्लिक गुप्त, पानू महान्ती, नीधू महान्ती और उपेन्द्रनाथ बनर्जी।

म०—ये लोग वहां क्या करते थे।

बा०—ये लोग मुझसे और उपेन्द्रसे धर्म्म तथा राजनीतिके ग्रन्थ पढ़ते थे। वे वहां हम लोगोंके साथ रहते थे।

म०—उनका गुजारा कैसे होता था?

बा०—मैं कितने ही लोगोंसे चन्दा करता था और इस ख्यालसे और पीछे इस कामकी शिक्षा देनेके लिये आदमियोंको भेजता था।

म०—पुलिसने वहां क्या पाया?

बा०—कुछ अस्त्रशस्त्र कई सेर डिनामाइट, नाइट्रिक और सलफ्यूरिक तेजाबकी कई बोतलें पायीं! ये चीजें जमीनके नीचे गड़े हुए दो लोहेके चौबच्चों और मट्टीके वर्त्तनोंमें थीं। सिर्फ और एक बात मैं आपसे नहीं बतला सकूंगा। वह है हमारे सहायकोंके नाम।

लाटोंकी जान।

म०—क्या दूसरे लोग भी ऐसे कामोंमें घूम रहे हैं?

बा०—नहीं। एलेन साहेबको और कुष्टियाके पादरीको गोली मारनेवाले हम नहीं थे। और किसीको मारनेका हमने

प्रबन्ध नहीं किया। अलवत्ते और कई आदमियोंका मारनेकी सलाह की थी, जैसे बड़े लाट, जंगीलाट वगैरह। अवश्य ही हम को यह भरोसा नहीं था कि इस प्रकारकी हत्याओंसे हमारा देश स्वाधीन हो जायेगा, तो भी कुछ कुछ इस लिये करते थे कि लोगोंकी ऐसी ही इच्छा हमने जानी थी और कुछ कुछ इस लिये कि ऐसी ही हत्याओंके होनेसे लोग साहसी होंगे और मरना सीखेंगे !

इकरारका उद्देश्य।

इकरार करनेके बारेमें हमारी मण्डलीमें मतभेद हो गया था। कुछ लोगोंका इरादा था कि सब बातें, इनकार कर जायें किन्तु मैंने उनको रामसदय मुकर्जीके पास लिखे हुए बयान देनेके लिये राजी किया। क्यों कि मेरा विश्वास यह है कि जब इस उपायका भेद खुल गया, तब इससे हमारी जातिकी स्वतन्त्रताका प्रबन्ध अब नहीं हो सकेगा। और इसके उपरान्त हमारे साथियोंमेंसे निर्दोष लोगोंको बचाकर सच्चे काम करनेवालोंका भी सबके सामने आजाना जरूरी है।

उल्लासकर दत्त।

मुजफ्फरपुरका बम।

उल्लासकरदत्तने भी मजिस्ट्रेटके सामने अपनी बात बयान

की। मैं राजी खुशीसे बयान करता हूं कुछ दबाव नहीं है। इत्यादि बातें हो जानेपर उल्लासकर दत्तने कहा :—मेरी उमर २३ वर्ष की है। मेरे पिताका नाम दुर्गादासदत्त है। मैं जातिका वैद्य हूं। टिपरा जिलेके कालीकाचा गांवमें मेरा मकान है। यहां हवड़ा जिलेके शिवपुरमें रहता हूं। मैं इस गुप्त मण्डलीमें शरीक हूं। सात आठ महीने पहले वारीन्द्रने मुझे इसमें शरीक कराया। मैं उसे चार पांच वर्षसे जानता हूं। 'युगान्तर' पत्रमें गुप्त मण्डली बनानेकी बात छपी थी। ऐसे काममें शामिल होनेकी मेरी स्वाभाविक इच्छा थी। मैं बम आदि बनाया करता था। इसमें शरीक होनेसे पहले ही मैंने इस विद्याको कुछ कुछ सीख लिया था। मैंने थोड़ी थोड़ी चीजें संग्रह की और आजमाते आजमाते यह विद्या सीखी थी। किसीने यह विद्या मुझे सिखायी नहीं थी। चन्दननगरमें ट्रेन गिरानेकी कोशिश होते समय मैं वहां मौजूद था। लोहेके चोंगेमें डिनामाइटके साथ भभकानेवाली चीजें मेरे पास थीं। मैं उनको ठीक जमा नहीं सका था। मैंने खुद वह चीजें बनायी थीं। खड़गपुरमें नहीं गया था। प्रफुल्ल, विभूती और वारीन्द्रबाबू गोआबागानके एक भाड़ेके मकानमें मेरी बनायी हुई चीजें लेकर लाटसाहेबकी ट्रेन उड़ानेके लिये वहां गये थे। ढाले हुए लोहेके चोंगेमें २॥ सेर डिनामाइटसे वह बम बना था। भभकानेकी चीज़ पिकरिक तेजाब और क्लोराइड और पोटाशकी

मिला वटसे बनी थी। मैंने और किसी अवसर पर और कोई चीज़ नहीं बनायी थी।

मैं ३२ नम्बर मुरलीपुकुर यानी मानिकतल्लेवाले बगीचेमें गिरिफ़ार हुआ। मैं कभी कभी वहां जाता था और दो दो तीन तीनदिन वहां रह भी जाता था। नये आनेवालोंके लिये हमने धर्मशिक्षाका प्रबन्ध कर रखा था। कलकत्तेमें मुझे एक वर्ष हो गया। इन्ट्रेन्स पास कर मैं ढाके गया था। मेरे भाईका नाम मनमोहनदत्त है। मैंने एफ. ए. तक पढ़ा था। सालभर वहां रह कर मैंने स्वाधीनता प्रचार करनेका सङ्कल्प किया। जिले जिलेमें घूमकर मैंने कितने ही अखाड़े बनवाये। प्रायः दो वष प्रचार कर बागीचेमें घुसा। वहां मैं उपनिषद् भी पढ़ता रहा। वहां और कोई बम आदि नहीं बनाता था। हेमचन्द्रदास कुछ दिनोंसे फ्रान्ससे लौट कर अपने मकानमें तथा गोपीमोहनकी गलीमें बम आदि बनाता था।

आगे मुजफ्फरपुरमें दो लड़कोंके जाने की कैफियत दी और बताया कि वहां भेजा हुआ बम मेरा नहीं हेमका बनाया हुआ था। उस माण्डलीका कोई सरदार नहीं था, किन्तु बारीन्द्र सरदारका काम करता था। बारीन्द्र, मैं, उपेन्द्रनाथ बनर्जी, इन्द्रनारायण राय, प्रफुल्ल चन्द्र चाकी और विभूति भूषण सरकार उस मण्डलीके काम करनेवाले हैं। कुछ नये आये हुए भी पकड़े गये हैं, किन्तु उनसे मण्डलीका कोई सम्बन्ध नहीं है।

उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय।

मेरी उमर २६ वर्ष की है। मैं रमानाथ बनर्जी का पुत्र हूं। पहले मैं 'बन्देमातरम् पत्र'का एक सहकारी सम्पादक था। मैं चन्दननगर गोंदलपाड़ा का रहनेवाला हूं। जब मैं कलकत्ते रहता हूं तो मानिकतल्लेके बागमें रहता हूं। चन्दननगरके डुपले कालेजसे एफ० ए० पास कर मैंने दो वर्ष मेडिकल कालिजमें पढ़ा था। तन्दुरुस्ती बिगड़नेसे एक वर्ष कुछ नहीं पढ़ा। आगे डफरिन कालेजमें दो वर्ष बी. ए. में पढ़ फिर मैं अलमोड़ा मायापुरीमें हिन्दुदर्शन और योग सीखनेके लिये, अद्वैत आश्रममें भर्ती हुआ। वहां दो वर्ष रहकर घर लौटा और गढ़वाली स्कूल का सहकारी हेडमास्टर नियुक्त हुआ। वहाँ आढ़ाई वर्ष काम कर भद्रेश्वर स्कूलमें प्रायः साल भर सेकण्डमास्टर रहा। देश सेवाके लिये उसे छोड़कर 'वन्दे-मातरम्' पत्रमें गया। वहां साल भर रहनेके बाद 'युगान्तर'का नियमित सम्पादक हुआ। देशका काम ठीक ठीक करनेके लिये एक धर्म संयुक्त राजनीतिक मण्डली गठित करने की जरूरत मुझे मालूम हुई कि जिससे हिन्दुस्थान का उद्धार का काम पूरा हो।

किन्तु मैंने विचारा कि धर्मके बिना हिन्दुस्थानियोंके पास पहुंचना असम्भव है। तब साधुओंका सहारा लेना जरूरी है।

इस विश्वाससे मैंने हिन्दुस्थानकी कितनी ही सैर की, किन्तु कहीं हमारे काममें मदद देने लायक एक भी साधु नहीं मिला ।

पुलिस कमिश्नरके सामने उपेन्द्रनाथने अपनी सैरकी हुई जगहोंका बयान यों दिया,—बहुत दिन बम्बई प्रान्तमें रहा किन्तु पूना नहीं गया । बम्बई नगर, बड़ौदा, बनारस, पञ्जाब, नेपाल आदि बहुतेरे स्थानोंमें साधुओंके सङ्गमें रहकर मैं उनसे अपने मतलबकी बात कहा करता था ।

जजिस्ट्रेटके सामने फिर कहा जब कि यह उद्देश्य निष्फल हुआ तब मैंने कुछ नौजवानोंको एकत्र कर तय्यार करनेके लिये धर्म्म, निर्म्मलचरित्र और राजनीतिकी शिक्षा देनेका कार्य आरम्भ करना उचित विचारा । गत सितम्बरमें जब मैं बारीन्द्र बाबूसे मिला, तब देखा कि उन्होंने वैसा ही काम शुरू कर दिया । जबसे मैं कलकत्तेमें हूं तबसे नौजवानोंको भारतीय धननीति और राजनीति द्रष्यनीति पढ़ाया करता था । मैं देशकी दशा और स्वाधीनताकी जरूरतको उनके जीमें धसा देनेका प्रयत्न करता था । और यह बतलाता था कि क्योंकर स्वाधीनता मिल सकती है । मैं उनको समझाता था कि स्वाधीनता पानेके लिये युद्ध करना जरूरी है । देश भरमें गुप्त-समितियां जारीकर हमारे उद्देश्योंका प्रचार करना, अस्त्रशस्त्र संग्रह करना और समय आनेपर गदर मचाना ही स्वाधीनता प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है ।

अफसरोंका काम तमाम।

मैं जानता था कि इस मण्डलीके कई आदमी बम आदि बनानेके कामपर नियुक्त थे कि जिससे वे प्रजाको सतानेवाले अफसरोंके प्राण ले सकें, जैसे छोटे लाट फ्रेज़र, किङ्गसफोर्ड आदि। जजिस्ट्रेटने कहा कि अब शायद मेरा नाम भी तुम्हारी काली बहीमें चढ़ेगा। असामीने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। आगे कहा—बम आदिसे साहबोंकी जान लेनेकी कोशिशकी बातें मैंने सुनी हैं। जिन लड़कोंको मैं शिक्षा देता था उनमें प्रफुल्ल नहीं था। मैं निर्दोषियोंके बचानेके लिये बयाब करता हूं।

